राज-भाषा हिन्दी

डा० सेठ गोविन्ददास

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशन-वर्ष	शक १८८६ : सन् १९६५ ई०
संस्करण	प्रथम संस्करण : ३,००० प्रतियाँ
मूल्य	रु० [illegible]
प्रकाशक	गोपालचन्द्र सिंह सचिव, प्रथम शासन-निकाय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
मुद्रक	रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

हिन्दी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वालो में डा० सेठ गोविन्ददास जी का विशिष्ट स्थान है। सेठ जी ने समय-समय पर कौंसिल ऑफ स्टेट से लेकर साहित्यिक समारोहों तक में राज-भाषा हिन्दी के पक्ष को पुष्ट तर्कों द्वारा प्रबल बनाने का अथक एवं अनवरत प्रयास किया है।

सेठ गोविन्ददास जी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के अपराजेय सेनानी के रूप में निरन्तर संघर्ष किया है और आज भी करते आ रहे है। आपके लिए हिन्दी का प्रश्न राष्ट्र-हित का अभिन्न अंग है।

हमारा विश्वास है कि आज जबकि राज-भाषा हिन्दी का प्रश्न उग्रतर रूप धारण कर चुका है यह पुस्तक, जोकि उनके राज-भाषा हिन्दी विषयक पाँच भाषाओं का एक संकलन है, रचनात्मक समाधान प्रस्तुत करने मे सहायक होगी।

गोपालचन्द्र सिंह
सचिव, प्रथम शासन-निकाय
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

विषय-सूची

नियमों में इस प्रकार का संशोधन कि सदस्य हिन्दी और उर्दू में भाषण कर सकें

१६ मार्च, १९२७

१६ मार्च, १९२७ को 'कौंसिल ऑफ् स्टेट' में सेठ गोविन्ददासजी ने मांग की कि भारतीय विधान-मण्डल मे हिन्दी या उर्दू मे भी भाषण करने की अनुमति मिलनी चाहिये। उन्होंने अपनी मांग के समर्थन मे निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित कर भाषण दिया—

"अध्यक्ष महोदय, जो प्रस्ताव मैं रखना चाहता हूँ, वह इस प्रकार है—'यह कौंसिल गवर्नर-जनरल से सिफारिश करती है कि वैधानिक प्रक्रिया के नियमों मे इस प्रकार परिवर्तन किया जाय, जिससे भारतीय विधान मण्डल के सदस्य हिन्दी या उर्दू में भाषण कर सकें और वे भाषण केन्द्रीय विधान मण्डल की औपचारिक कार्रवाई में नियमानुसार मुद्रित व प्रकाशित हों।'

अध्यक्ष महोदय, हम कई वर्षो से 'स्वराज' की बात करते रहे है और 'स्वराज' शब्द इतना लोकप्रिय हो गया है कि महामहिम सम्राट् ने, महामहिम ड्यूक आव् कनाट के द्वारा जो सन्देश भेजा है, उसमे भी उन्होने उसकी चर्चा की है। किन्तु, श्रीमन्, मुझे आशंका है कि हम अभी तक इस शब्द का पूरा महत्त्व नही समझ पाये। मेरी दृष्टि में राजनीतिक स्वराज्य, जो इस देश की सभ्यता, कला, संस्कृति व भाषा से रहित हो, निरर्थक है। स्वाभाविक रूप से एक देश के विधान मण्डल की कार्रवाई उसी भाषा मे चलनी चाहिए, जो वहाँ की जनता बोलती हो। ब्रिटिश संसद् की कार्रवाई इटालियन में होना और इटालियन प्रतिनिधि सभा की कार्रवाई अंग्रेज़ी मे चलने की कल्पना भी असम्भव है ; किन्तु यहाँ हमारे मामले में स्टैण्डिग आर्डर नं० २७ मे चुपचाप यह व्यवस्था दे दी गयी है कि "इस विधान-मण्डल की कार्रवाई अग्रेज़ी में चलेगी।" और फिर घाव पर नमक छिड़कने के लिए लैजिस्लेटिव असेम्बली के भूतपूर्व अध्यक्ष सर फ्रेडरिक व्हाइट ने अपनी एक पुस्तक मे कहा है—"किसी भी भारतीय भाषा में समस्त भारत की भाषा बनने की सामर्थ्य कदापि नही। अत: भविष्य में प्रान्तीय स्तर की भाषा चाहे कोई भी हो, किन्तु सघीय भाषा सदा अग्रेजी ही रहेगी और भारतीय एकता का यही सबसे बड़ा उपकरण है।'

श्रीमन्, मेरी सम्मति में यह घाव पर नमक छिडकना है। यदि अंग्रेजी ही सयुक्त भारत की भाषा बनने वाली है, तो मुझे यह कहना पड़ता है कि यह संयुक्त भारत एक अराष्ट्रीय भारत होगा। अंग्रेज़ी इस देश की भाषा न कभी रही है और न आगे होगी। सदन की सन्तुष्टि के लिए मैं इसे सिद्ध करना चाहता हूँ।

गत जनगणना के अनुसार भारत की ३२ करोड़ की कुल जनसख्या में अग्रेज़ी केवल ३ लाख व्यक्तियो द्वारा बोली जाती है और बहुत कम सख्या मे समझी जाती है। जनगणना रिपोर्ट में स्पष्ट कहा गया है कि प्रति १०,००० व्यक्तियो मे केवल १६० पुरुष और १८ महिलाएं ही अंग्रेजी लिख व पढ सकती है। श्रीमन्, इस भाषा को भारत की राष्ट्रीय भाषा बनाया जा रहा है। १५० वर्ष के ब्रिटिश शासन मे भारतीय जनसख्या के इतने छोटे भाग को अग्रेजी मे शिक्षित किया जा सका है। मै इस सदन के माननीय सदस्यों से पूछना चाहता हूँ कि इस गति से इस देश की सारी जनता को अग्रेजी सिखाने मे कितने दिन लगेगे। फिर क्या यह उचित भी है कि एक विदेशी भाषा दूसरे देश पर राष्ट्रीय भाषा के रूप मे लादी जाय। जो लोग अपनी भाषा को दबाते है, या दबाने पर बाध्य होते हैं, उनका व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है। आयरिश कवि थामस डेविस ने इस सम्बन्ध में अपनी मातृ-भाषा गेलिक में कहा है—

"कोई राष्ट्र अपनी मातृभाषा को छोड़कर राष्ट्र नही कहला सकता। मातृ-भाषा की रक्षा सीमाओं की रक्षा से भी जरूरी है, क्योंकि यह विदेशी आक्रमण को रोकने मे पर्वतों और नदियों से भी अधिक समर्थ है।"

श्रीमन्, इसीलिए इतिहास मे विजेताओं की सदा से विजित भूमि पर अपनी भाषा लादने की नीति रही है। विजित देशों ने भी सदा इन अत्याचारों का सामना किया है और अपने क्षेत्र से भी अधिक अपनी मातृभाषा की रक्षा की है। हम यह बात कई देशो के इतिहास मे पाते है। इगलैण्ड मे भी नार्मन-विजय के बाद विजेताओं ने अपनी भाषा थोपने का प्रयत्न किया। समस्त प्रशासनिक कार्य नार्मन-फ्रेंच मे किये जाने लगे , किन्तु यह अधिक समय तक नही चला और इसका स्थान ऐंग्लो-सैक्सन भाषा ने ही लिया। पोलैण्ड के इतिहास में भी हम यही बात देखते है। जब रूस, प्रशिया व आस्ट्रिया ने उसका विभाजन किया और वहाँ अपनी-अपनी भाषा लादने का प्रयत्न किया, तो पोलैण्डवासियो ने इसका विरोध किया। उन्होने उन विश्वविद्यालयों का बहिष्कार किया, जहाँ प्रशियन और रशियन भाषाएँ पढ़ाई जाती थी और विल्ना व क्रैको के अपने पुराने विश्वविद्यालयों को पुनर्जीवित किया। यही बात हगरी में हुई। जब आस्ट्रिया ने हगरी पर अपनी भाषा लादने का

प्रयत्न किया, तो हगरी की जनता ने इसका विरोध किया और केवल इस शर्त पर आस्ट्रियन साम्राज्य का अग बनना स्वीकार किया कि उनकी भाषा को भी प्रशासन मे बराबर का दर्जा दिया जायेगा। इसी प्रकार आयरलैण्ड ने भी अग्रेजी अपनाने से इन्कार कर दिया और अपनी मूल भाषा गैलिक को पुनर्जीवित किया। दक्षिण अफ्रीका मे भी बोअरवासियो ने अपने अग्रेज शासकों को वाध्य कर दिया कि वे उनकी भाषा को प्रशासन में सम्मानपूर्ण दर्जा दे। भारत मे भी अग्रेजों ने भाषा के सम्बन्ध मे विजेताओं की पुरानी परम्परा अपनाई, जिसे मैं यहाँ कुछ ब्रिटिश अधिकारियों के वक्तव्य उद्धृत करके स्पष्ट करूँगा।

१७९२ मे चार्ल्स ग्रान्ट ने भारतीयों को इंगलैण्ड के निकट लाने की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा था, कि हिन्दू जनता को अपने साथ बांधने और अपने आधिपत्य को चिरस्थायी करने के लिए हमे बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण तरीके अपनाने होगे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अन्तर्गत मद्रास के गर्वनर सर चार्ल्स ट्रेवेल्यान ने अपनी एक पुस्तक मे कहा—

"अग्रेज़ी ढग से शिक्षित, अग्रेज़ी उद्देश्यों मे सलग्न और अग्रेजी साम्राज्य के कार्यो मे सक्रिय व्यक्ति हिन्दू से भी अधिक हो जाता है, जिस प्रकार रोमन ढग से शिक्षित गाल और इटालियन रोमन हो गये।"

उन्होने आगे कहा—

"अंग्रेजी साहित्य भी हमारी उद्देश्यपूर्त्ति में कम सहायक नहीं। अग्रेज़ी साहित्य से परिचित व्यक्ति यह भूल जाता है कि हम विदेशी हैं और घोर विरोधी की बजाय हमारा निकटतम सहयोगी हो जाता है।"

वह और आगे कहते हैं—

"ऐसा व्यक्ति हमें नापसन्द करने की बजाय हमारे निकट आने मे गर्व अनुभव करेगा, हमे अपने संरक्षक व शुभचिन्तक की दृष्टि से देखेगा और स्वेच्छा से हमारे ढांचे मे ढल जायेगा।"

जब भारत की बागडोर ससद् के हाथ में आई, तब भी अग्रेजी शासकों की यह नीति नही बदली। सन् १८८० में सर अलैग्जैण्डर आर्बटनाट ने कहा—"भारत में शिक्षाप्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए कि लोग ब्रिटिश शासन को अपना सौभाग्य माने और इसमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन को अपने लिए दुर्भाग्यपूर्ण समझें।"

सन् १८८० में ही सर रिचर्ड टैम्पल ने अपनी पुस्तक मे कहा—"अंग्रेजी भाषा, साहित्य व दर्शन से शिक्षित व्यक्ति अपनी मूल राष्ट्रीयता से बिल्कुल मुक्त होकर इग्लिश राष्ट्र के निकट आ जायेगा।"

अत:, श्रीमन् यह स्पष्ट है कि अग्रेजों ने भारतीयो को अग्रेजी मे शिक्षित करने की नीति अपने साम्राज्य को जमाने के लिए और हमारी राष्ट्रीयता को समाप्त करने के लिए अपनाई थी।

अब प्रश्न उठता है कि जब अग्रेजी हमारी भाषा नही और न होगी, तो इस विशाल देश की राष्ट्रीय भाषा का दर्जा और कौन-सी भाषा ले सकती है। सौभाग्य-वश इसके लिए हिन्दी या उर्दू का नाम लिया जा सकता है। मैं यहा यह भी कहना चाहूंगा कि हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा है। दोनो की बनावट और दोनो का व्याकरण एक ही है। एक यूरोपियन डा० बीम्स के मतानुसार—"हिन्दी और उर्दू को दो विभिन्न भाषाएँ समझना एक बहुत बडी गलत-फहमी है।"

श्रीमन्, मुझे विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र इस सदन के मुस्लिम सदस्य मेरे इस मत को समझेगे कि हिन्दी व उर्दू दो विभिन्न भाषाएँ नही। इसीलिए मैंने अपने प्रस्ताव में "हिन्दी और उर्दू" न कहकर "हिन्दी या उर्दू" कहा है।

अब हमे देखना है कि इस देश में हिन्दी की वर्तमान स्थिति क्या है। गत जन-गणना रिपोर्ट के अनसार साढ़े तेरह करोड़ लोग हिन्दी बोलते है और पाच करोड बगाली, दो करोड़ मराठे और एक करोड़ गुजराती हिन्दी समझ सकते हे। यदि प्रयत्न किया जाये, तो ये सब हिन्दी बोल भी सकते है। दक्षिण भारत की लगभग साढे चार करोड़ जनता इस समय हिन्दी नही समझती, किन्तु मै इस सदन को बताना चाहता हू कि उनके लिए भी हिन्दी ग्रीक के समान नही। गत सात वर्ष से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की एक शाखा वहाँ कार्य कर रही है, जिसके बहुत सन्तोषजनक परिणाम निकले है। हाल मे कोकनाड़ा मे नेशनल काग्रेस के अवसर पर स्वागत समिति के अध्यक्ष—जो स्वयं तेलगू-भाषी थे—ने हिन्दी में भाषण किया। इसी समय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का एक विशेष अधिवेशन हुआ और इसमे भी स्वागत समिति के अध्यक्ष ने तेलगू-भाषी होते हुए हिन्दी मे भाषण किया। सम्मेलन मे भाग लेने वाले कई तमिल व तेलगू-भाषी लोगों ने हिन्दी मे विचार व्यक्त किये।

अब प्रश्न उठता है कि क्या भारत के विभिन्न प्रान्तो मे रहने वाले लोग—बंगाली, गजराती व महाराष्ट्री—हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर ले। मैं इन भाषाओं के विद्वानो के विचार उद्धृत करके इसे सिद्ध करना चाहूंगा।

विश्वविख्यात साहित्यिक व बंगला के सर्वोच्च कवि डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है। सर गुरुदास बैनर्जी, श्री रमेशचन्द्र दत्त व डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने भी यही विचार व्यक्त किया है। स्वर्गीय श्री रमेशचन्द्र दत्त कहते है—"यदि कोई भाषा भारत के अधिकाश भाग में स्वीकार

की जा सकती है, तो वह हिन्दी है।" डा० राजेन्द्रलाल मित्र कहते है--"हिन्दी भारत की सब से अधिक महत्त्वपूर्ण भाषा है और यह भारत के शिक्षित लोगों की भाषा है।"

महाराष्ट्रियों मे भी हम यही बात देखते हैं। लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व मराठी साहित्य परिषद् मे वहाँ के विद्वान् एकत्रित हुए और उन्होंने एक प्रस्ताव पास करके हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा घोषित किया। प्रथम अखिल भारतीय नेता लोकमान्य बाल गगाधर तिलक ने हिन्दुस्तानी से अपनी शिक्षा प्रारम्भ की और मैंने स्वय उन्हें उनकी मृत्यु से कुछ समय पूर्व जबलपुर में हिन्दी मे भाषण करते सुना था। महाराष्ट्र के एक अन्य विद्वान् डा० भाण्डारकर कहते हैं—"भारत में अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए समान भाषा का दर्जा हिन्दी को ही दिया जा सकता है। और इसे समस्त भारत मे स्वीकार कराने में अधिक कठिनाई नही होगी।" इतिहासवेत्ता रावबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य कहते हैं—"हिन्दी हर दृष्टि से भारत की राष्ट्रभाषा बनने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है।"

हिन्दी मे गुजरात की भक्ति को स्पष्ट करने की अधिक आवश्यकता नही। स्वामी दयानन्द सरस्वती और महात्मा गांधी गुजरात के दो सबसे बडे पुत्र हैं। स्वामी दयानन्द ने अपने समस्त ग्रन्थ हिन्दी मे लिखे, अपने धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार हिन्दी मे किया और महात्मा गाधी ने अपने प्रयत्नो से हिन्दुस्तानी को भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की मुख्य भाषा के रूप मे स्वीकृत कराया। वह कहते है—"अग्रेजी जनता की भाषा कभी नही बन पायेगी और हमे अपने राजनीतिक कार्यो मे प्रतिदिन जनता के अधिक से अधिक निकट आना होगा। देश मे लगभग एक प्रतिशत लोग भी मुश्किल से अंग्रेजी समझते हैं, जबकि ६० प्रतिशत से अधिक जनता सामान्य रूप से हिन्दुस्तानी समझती है।"

हम यह भी देखते है कि अतीत मे बगाल, महाराष्ट्र व गुजरात के बहुत-से लेखको ने हिन्दी मे लिखा। राजस्थान तथा गुजरात के दो प्रसिद्ध कवियो—मीराबाई व नरसी मेहता—ने हिन्दी मे लिखा और पश्चात् भी दो कवि—दयाराम और नर्मदाशकर—हिन्दुस्तानी मे लिखते रहे हैं। बगाल में जस्टिस शारदाचरण मित्र व अमृतलाल चक्रवर्ती ने हिन्दी की समृद्धि मे योग दिया। महाराष्ट्र मे सन्त तुकाराम व मोरोपन्त ने हिन्दी में लिखा और इनके बाद भी पण्डित माधवराव सप्रे तथा कई अन्य सज्जन हिन्दुस्तानी मे लिखते रहे हैं।

अब हमे देखना है कि यूरोपियन इस बारे में क्या कहते हैं? भारतीय भाषाओं के सबसे बड़े ज्ञाता डा० ग्रियर्सन कहते हैं—"भारत मे एक भाषा (हिन्दी) ही

राष्ट्रभाषा का स्थान ले सकती है। यही एक भाषा है, जिस में दो विभिन्न प्रान्तों के लोग आपस मे बातचीत कर सकते है। यह भारत मे सर्वत्र समझी जाती है, क्योकि इसका व्याकरण भारत की अधिकाश भाषाओं के समान है और इसका शब्द-कोश सबकी सम्मिलित सम्पत्ति है।"

श्री फ्रेडरिक पिनकाट कहते है——

"हिन्दी ने अपना स्थान बना लिया है, इसे ६ करोड लोग बोलते है और इसे उनकी प्रशासनिक भाषा बनाने से अधिक देर तक रोका नही जा सकता। हिन्दी तेजी से आगे बढ रही है, इसका साहित्य अधिकाधिक आगे बढ रहा है और इस गति से यह वर्तमान स्थिति को बनाये रखना असम्भव कर देगी।"

अब हमे देखना है कि हिन्दुस्तानी के बारे मे विभिन्न भारतीय राज्यों की क्या नीति है। मैं केवल उन्ही राज्यो के बारे मे कहूँगा, जो हिन्दी भाषी नही है। बडौदा में राज-परिवार की भाषा मराठी है और जनता की भाषा गुजराती; किन्तु वहां की शिक्षाप्रणाली मे हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य कर दिया गया है। हिन्दी अब वहां प्रत्येक को पढाई जा रही है। ग्वालियर और इन्दौर मे भी राज-परिवार की भाषा मराठी है; किन्तु वहा प्रशासनिक कार्यो मे हिन्दी का उपयोग होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हिन्दी का शब्द-कोश भारत की राष्ट्रभाषा होने के लिए उपयुक्त है। अतीत मे यूरोपियन विद्वानों का मत था कि "भारतीय भाषाए भद्दी, अवैज्ञानिक, मूर्खतापूर्ण और निरर्थक है।" यह धारणा अब बदल गयी है। श्री क्रस्ट अपनी एक पुस्तक मे कहते है—"भारतीय भाषा में कोई भी मानवीय भावना व्यक्त करने की पूर्ण सामर्थ्य है और यह उच्चतम वैज्ञानिक शिक्षा के लिए भी उपयुक्त है।"

सन् १९०१ की भारतीय जनगणना रिपोर्ट के प्रथम खण्ड के पृष्ठ सं० ३०७ मे कहा गया है कि "हिन्दी के पास ऐसा शब्द-कोश और अभिव्यक्ति की ऐसी सामर्थ्य है, जो अग्रेजी से किसी भी प्रकार कम नही।"

अब, श्रीमन्, एक और प्रश्न है। यह पूछा जा सकता है कि क्या हिन्दुस्तानी को सीखना आसान है? श्री मकमर्डी कहते है—"किसी विदेशी के लिए अग्रेजी सीखना तीन कारण से कठिन है। इसका अक्षरविन्यास (स्पेलिग) बड़ा अनियमित है, इसका शब्द-कोश बड़ा विस्तृत है और इसमे मुहावरे विचित्र प्रकार के है।" हिन्दी के सम्बन्ध मे महात्मा गांधी कहते हैं—"एक औसत बंगाली यदि प्रतिदिन ३ घंटे हिन्दी पढ़े, तो २ मास में और एक द्रविड़ ६ मास में इसे सीख सकता है। बंगाली हो या द्रविड़, वह अग्रेज़ी को इतनी जल्दी नहीं सीख सकता।"

इस प्रकार श्रीमन्, जब भारत की सारी जनसंख्या हिन्दुस्तानी समझती है और आधी बोलती भी है, तब क्या यह विडम्बना नही कि हमारे केन्द्रीय विधान-मण्डल की कार्रवाई एक ऐसी भाषा (अग्रेजी) में चलाई जाये, जिसे केवल ३ लाख लोग बोलते है और अधिक-से-अधिक ३० लाख समझते हैं। यूरोपियन अपने को भारत का सेवक बताते हैं और यहां हमे कार्रवाई अग्रेजी मे चलाने पर बाध्य किया जाता है। यदि वे सचमुच इस देश के सेवक है, तो उन्हे हमारी भाषा सीखनी चाहिए। वे तो भारत के सेवक हैं और भाषा हमें उनकी सीखनी पडती है, कार्रवाई हमें उन्ही की भाषा मे चलानी पडती है। इस सम्बन्ध मे वर्तमान आदेश मे अग्रेजी को प्राथमिकता देते हुए कहा गया है—'यदि अध्यक्ष चाहे, तो परिषद् मे अग्रेजी न जानने वाले सदस्य को देशी भाषा मे बोलने की अनुमति दे सकता है।'

इससे लगता है कि मुख्य स्थान अग्रेजी का है और देशी भाषाओ को केवल सहन किया गया है। इसी प्रकार प्रशासन मे उच्च पद यूरोपियनों को मिलते हैं और माननीय सर मुहम्मद हबीबुल्ला व माननीय श्री एस० आर० दास को अपवाद रूप में लिया गया है। मेरी सम्मति मे यह स्थिति बदलनी चाहिए। हमे प्रशासनिक सेवाओं का भारतीयकरण और विधान-मडल की कार्रवाई का हिन्दुस्तानीकरण करना चाहिए। फिर यह शिकायत भी की जाती है कि जनता नये सुधारो और विधान-मण्डलो के प्रति उदासीन है। इसका एक कारण यह भी है कि जनता विधान-मण्डल की कार्रवाई नही समझ सकती। इस सदन की दर्शक दीर्घा मे या तो वे लोग आते हैं, जो अंग्रेज़ी समझते हैं या वे, जो सदस्यो के खूबसूरत चेहरे और सदन की शान-शौकत देखना चाहते हों। सदन की कार्रवाई समझने के लिए यहाँ बहुत कम लोग आते है। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस मे भी तब तक यही शिकायत रही, जब तक हिन्दुस्तानी को नही अपना लिया गया। १९१९ तक कांग्रेस अधिवेशन मे बहुत सीमित सख्या मे प्रतिनिधिगण आते थे। दर्शकगण भी बहुत कम संख्या मे आते थे; किन्तु जब से कांग्रेस ने अपनी कार्रवाई हिन्दुस्तानी में चलानी शुरू की, तब से एक महान् अन्तर आ गया। मैं सरकार को विश्वास दिलाता हूँ कि जिस दिन उन्होने इस सदन मे यह नीति अपना ली, दर्शक दीर्घाए खचाखच भरी नजर आयेगी और लोग इसकी कार्रवाई मे असली रुचि लेंगे।

इस दिशा मे सदन के सामने अगली कठिनाई हिन्दुस्तानी की सकेत-लिपि (शार्टहैड) की आयेगी। मैं कहना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तानी की सकेतलिपि बहुत पूर्ण और सरल है। कोई व्यक्ति अग्रेजी की सकेत लिपि ४ मास से कम मे नही सीख सकता जबकि हिन्दुस्तानी की २ मास मे पूरी तरह सीखी जा सकती है। इस प्रणाली

की जांच १९२१ में तब हुई, जब अहमदाबाद कांग्रेस में सारी कार्रवाई इसी ढग से ठीक-ठीक अंकित की गयी। जिस दिन सरकार ने सदन मे हिन्दुस्तानी भाषण को प्रोत्साहन दिया, ऐसे लोग स्वतः मिल जायेंगे, जो हिन्दुस्तानी सकेत-लिपि मे सारी कार्रवाई अकित कर सके।

अन्त मे मैं सरकार से एक अपील करना चाहूँगा। सरकार की यह घोषित नीति है कि अन्ततः वह एक भारतीय राष्ट्र को जन्म देकर उसे स्वराज्य प्रदान करना चाहती है। श्रीमन् मुझे यह कहने की आज्ञा दीजिये कि राष्ट्रभाषा राष्ट्रीयता का सबसे बडा चिह्न है। सौभाग्य से हमारे पास एक ऐसी भाषा है, जो हमारी राष्ट्र-भाषा और जनभाषा बन सकती है। जर्मनी मे हम क्या देखते है? फ्रेकफर्ट की सन्धि तक जर्मनी कई भाषाओं में विभाजित था—हाई जर्मन, लो जर्मन और अन्य अनेक बोलियां, किन्तु जब से उसने एक भाषा अपनाई, वह एक महान् राष्ट्र बन गया। सरकार यहाँ हिन्दुस्तानी अपनाये और मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यहा भी एक भारतीय राष्ट्र अल्पकाल में निर्मित हो जायेगा। स्वराज की मांग पर हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न खड़ा कर दिया जाता है, किन्तु हिन्दुस्तानी के प्रश्न पर सौभाग्य से दोनो एकमत है। सिख भी हमारे साथ हैं। उनकी कई धार्मिक पुस्तके और यहा तक कि ग्रन्थ साहब भी हिन्दुस्तानी मे लिखा गया था। इस प्रकार भारत में रहने वाली सभी जातिया, चाहे वे हिन्दू हों या मुस्लिम, सिख हो अथवा जैन, हिन्दुस्तानी के प्रश्न पर एकमत है। अतः सरकार मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करके अपनी यह घोषणा प्रकाशित करे कि वह एक भारतीय राष्ट्र का निर्माण करना चाहती है। इन शब्दो के साथ मैं, श्रीमन्, अपना प्रस्ताव सदन की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करता हूँ।"

(बहस के उपरान्त उत्तर मे गोविन्ददास का भाषण)

"अध्यक्ष महोदय, माननीय सर उमरहयातखां और माननीय श्री दास ने मेरे प्रस्ताव के विरुद्ध बहुत कुछ कहा है। मैं खुद भी यह प्रस्ताव कर्नल नवाब सर उमरहयातखां के शब्दों में पेश कर सकता था, किन्तु मुझे भय है कि यह सरकार को तब और भी अधिक अव्यावहारिक लगता। प्रस्ताव में इतनी विनम्र भाषा के प्रयोग के बाद भी जब मेरे माननीय मित्र श्री दास को इस पर आपत्ति है, तो यदि मैं सरकार से सदस्यों को अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी मे बोलने के लिए बाध्य करने की मांग करता, तब श्री दास क्या कहते? जो बात यह अब कह रहे है, उसे मैं भी कह सकता था और शायद अधिक जोर के साथ कहता, किन्तु काश कि मैं व्यावहारिकता का ध्यान रखते हुए ऐसा न कर सका।

मेरे माननीय मित्र श्री दास ने कहा है कि हमें इस प्रश्न को व्यावहारिकता की दृष्टि से देखना चाहिए। वह मेरी भावना की सराहना करते हुए स्वीकार करते है कि देश में एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। मैं समझता हूँ कि वह यह भी स्वीकार करते हैं कि अंग्रेजी इस देश की राष्ट्रभाषा कदापि नही हो सकती, यद्यपि अपने लम्बे भाषण मे उन्होंने यह बात नही कही। वह जानते हैं कि १५० वर्ष के ब्रिटिश साम्राज्य की लम्बी अवधि में जब अंग्रेज़ी इस देश की राष्ट्रभाषा नही बन सकी, तो यह अब कैसे बन सकती है। वह अंग्रेजी के मामले मे भी यही "व्यावहारिक" कठिनाई अनुभव करते हैं और मुझसे तब तक प्रतीक्षा करने के लिए कहते है, जब तक देश में प्रत्येक व्यक्ति हिन्दी नही समझ जाता। हमने १५० वर्ष तक प्रतीक्षा की है। कुछ भारतीय ऐसे भी है, जो कहते है कि हिन्दुस्तानी या हिन्दी राष्ट्रभाषा नही बन सकती और केवल अग्रेजी ही यह दर्जा ले सकती है। अंग्रेजी का काफी प्रसार हो जायेगा, तो सरकार यह अनुमति भी नही देगी कि हम अपनी किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने की मांग करे; अत. मैं सरकार से अपील करता हूँ कि वह मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर जनभावनाओ का आदर करे। मै केवल यह चाहता हूँ कि सदन में जो सदस्य हिन्दी में बोलना चाहे, यद्यपि वह अंग्रेज़ी जानता हो या न भी जानता हो, उसे हिन्दी मे बोलने की अनुमति दी जाय। मैं किसी माननीय सदस्य को हिन्दी मे बोलने के लिए बाध्य नही करना चाहता। मैं केवल सरकार से हिन्दी के लिए समानता का दर्जा चाहता हूँ और कुछ नही, और जब इतना विनम्र प्रस्ताव, इतना महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव, जनभावनाओ का प्रतिनिधित्व करनेवाला प्रस्ताव सदन मे लाया जाता है, और सरकार इसका विरोध करती है, तो मैं स्वाभाविक रूप से क्षुब्ध हो जाता हूँ।

श्रीमन्, मैं अपने माननीय मित्र श्री दास के तर्क स्वीकार करने में असमर्थ हूँ और अपना प्रस्ताव सदन की सम्मति के लिए प्रस्तुत करता हू।"

मतदान

पक्ष में–१२ **विपक्ष में–२२**

जिन्होने पक्ष मे मत दिये उनमे तीन मुस्लिम सदस्य, तीन बंगाली सदस्य और तीन दक्षिण भारतीय थे । उस समय की कौसिल आफ स्टेट मे नामजद सरकारी और गैरसरकारी सदस्यों की सख्या काफी होती थी ; अतः विपक्ष मे जिन २२ सदस्यों ने मत दिया, उनमे १४ तो अंग्रेज ही थे । शेष आठ में से अधिकाश नामजद थे । यह एक भाग्य की विडम्बना थी कि इन नामजद सदस्यो मे हिन्दी के प्रसिद्ध

मिश्र-बन्धुओ के पडित श्यामबिहारी मिश्र को भी नामजद सदस्य होने के कारण इस प्रस्ताव के विपक्ष में मत देना पड़ा था। इस प्रकार यद्यपि यह प्रस्ताव अस्वीकृत तो हो गया ; परन्तु यथार्थ मे यह स्वीकृत माना जाना चाहिए।

नोट---उपर्युक्त दोनों भाषण मूल मे अंग्रेजी मे है, क्योंकि उस समय नियम था कि जो सदस्य अंग्रेजी जानते है, उन्हे केवल केन्द्रीय विधान सभाओं में ही नही, प्रांतीय विधान सभाओ मे भी अपने भाषण अंग्रेजी मे देने चाहिए।

कौन भाषा में संविधान-सभा की कार्यवाही चलेगी

२३ दिसम्बर, १९४६

श्री सेठ गोविन्ददास—मैं निम्नलिखित संशोधन पेश करता हूँ—

"मैं चाहता हूँ कि दूसरी पक्ति से 'आर इगलिश' शब्द हटा दिया जाय। बाद मे जहाँ नियम यह कहता है कि शर्त्त यह है कि अध्यक्ष उन सदस्यो को, जो इन दोनों भाषाओ (हिन्दी या अग्रेजी) से अपरिचित है, इस परिषद् मे अपनी मातृभाषा मे बोलने की अनुमति देगे, यहाँ 'मदर टंग' के बाद 'आर इंगलिश' रखा जाये।

इस समय जैसा कि नियम है उसके अनुसार हम लोग हिन्दी, उर्दू यानी हिन्दुस्तानी या अग्रेजी मे यहाँ बोल सकते है; लेकिन हमने देखा कि ९ तारीख के बाद जब से हमने अपनी कार्रवाई शुरू की, हिन्दुस्तानी के लिए कोई बधन न रहने पर भी हम लोगो की यहाँ जितनी कार्रवाई हुई है, वह ज्यादातर अग्रेजी में ही हुई है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि जब यह परिषद् स्वतत्र भारत का विधान बनाने जा रही है, और यदि अग्रेजी को ही अपनी राष्ट्रभाषा मानकर वह काम करना चाहती है, तो यह एक बडे दु.ख की बात है। अग्रेजी कभी भी हमारी राष्ट्रभाषा नही हो सकती। मैं यह कहना चाहता हूँ, अपने मद्रासी भाइयो से, कि अगर २५ वर्षो के बाद, महात्माजी के प्रयत्नों के बाद, उतनी कोशिश के बाद भी और काग्रेस में जो कुछ हो रहा है, उसके बाद भी अगर वह हिन्दुस्तानी नही समझते है, तो यह उनका दोष है, हमारा नही। और जब यह दोष उनका है, तो इसके लिए जो कठिनाई उनके सामने उपस्थित है, उन्हे उसे मजूर करना पडेगा। यदि कुछ मद्रासी भाई हिन्दुस्तानी नही समझ सकते और इसके लिए हमारी विधान परिषद् मे, जिसे सत्ता-सम्पन्न सभा कहा जा सकता है और जो स्वतन्त्र भारत का विधान बनाने के लिए बैठी है, अग्रेजी का दौर-दौरा रहता है, तो यह हमारी बरदाश्त के बाहर है। आप जानते है कि मैं बहुत कम बोलता हूँ, लेकिन जो सैद्धान्तिक बाते है, उनके लिये हर किसी को अपने विचार आगे रखने को तैयार रहना चाहिए और उसी के आधार पर मैंने अपनी बाते कही है। मेरा विश्वास है कि मेरी इस तरमीम को, जो अग्रेजी मे बोलना चाहते हैं और हिन्दुस्तानी नही जानते, उनको अग्रेजी मे बोलने की आजादी हो,

आप मजूर करेंगे। इस तरमीम के बाद यहाँ जो कार्यवाही होगी, वह, मैं आशा करता हूँ कि हिन्दुस्तानी भाषा मे होगी, न कि अग्रेजी में।

हमारे नरम दल के भाई अग्रेजी को ही अपनी राष्ट्रभाषा मानते थे और यदि मानते नही थे, तो कम-से-कम बनाना चाहते थे; लेकिन हमने देखा कि इतने वर्षो के बाद भी हिन्दुस्तान मे कितने लोग अंग्रेजी पढ सके। अग्रेजी आज कितने लोग समझ सकते है। हमें इतिहास से मालूम होता है कि विजेता जिन पर विजय प्राप्त कर लेता है, उन पर वह अपनी भाषा लादना चाहता है। आयरलैण्ड के इतिहास मे, इगलैंड के इतिहास मे, हंगरी के इतिहास मे अनेक जगह हमें यह देखने को मिलता है। जिन देशों पर विदेशियो ने अपनी भाषा लादनी चाही, उन्होने बराबर अपनी भाषा के लिये युद्ध किये और आखिर में विजय प्राप्त की। जहाँ तक आयरलैंड की गैलिक भाषा का सम्बन्ध है, वह करीब-करीब समाप्त हो चुकी थी, लेकिन उन्होने उसके लिए भी लडाई की और आखिर में आयरलैण्ड की जीत रही।

हिन्दुस्तानी को व्यवहार मे लाने के लिए तीन कठिनाइयाँ पेश की जाती है। पहली बात यह कही जाती है कि हम को ऐसे वैज्ञानिक शब्द नही मिलते, जिनसे हमारी कुल कार्रवाई हिन्दुस्तानी मे हो सके। मैं कहना चाहता हूँ कि हमारे सामने उस्मानिया युनिवर्सिटी का एक बहुत बडा दृष्टान्त मौजूद है, जहाँ पर सारी पढाई का माध्यम हिन्दुस्तानी है। हिन्दुस्तानी मे वैज्ञानिक शब्दो को ढालने की उन्होने कोशिश की, उसके लिए विशेषज्ञ रखे। मैं यह नही चाहता कि जो लोग हिन्दुस्तानी नही बोल सकते, उनको जबरदस्ती हिन्दुस्तानी मे बोलने को कहा जाय। इसीलिए मदर टंग के बाद मैंने अग्रेजी शब्द जोड दिया है। जो लोग हिन्दुस्तानी नही बोल सकते, उनको आजादी होगी कि वे अग्रेजी में बोलें। तीसरी कठिनाई यह कही जाती है कि बहुत-से लोग हिन्दुस्तानी नही समझ सकते। मैं कहना चाहता हूँ कि ऐसे लोग बहुत कम है, जो हिन्दुस्तानी न समझते हो। उनकी सख्या अँगुली पर गिनी जा सकती है। जो कठिनाई आज हमारे सामने लाई जाती है, वह काग्रेस के सामने भी लायी जाती थी, पर हमने देखा कि महात्मा गाधी के प्रयत्नों के बाद आज काग्रेस मे हिन्दुस्तानी मे ही भाषण होते है। वहाँ पर जो लोग हिन्दुस्तानी नही जानते, वही अग्रेजी मे भाषण देते हैं। यहाँ भी यही होना चाहिए। ९ तारीख से अब तक जो कार्यवाही विधान-परिषद् ने की है, उसे देखते हुए यह मालूम होता है कि यहाँ पर अंग्रेजी का ही दौरदौरा रहेगा।

आज से २० वर्ष पहले जब मैं कौसिल आफ स्टेट का मेम्बर था, मैने इस सम्बन्ध में वहाँ भी एक प्रस्ताव रखा था। उस वक्त सर गोपाल स्वामी, जहाँ तक मुझे याद है, वहाँ मौजूद थे और उनको याद होगा कि उस समय कितनी बहस हुई थी।

उस बहस में मैंने आयरलैण्ड के एक कवि का उद्धरण पढा था, मैं अपने मद्रासी भाइयों के लाभ के लिए इस कथन को पढना चाहता हूँ। वह कथन अंग्रेजी मे इस प्रकार है—

"The Nation without a mother-tongue cannot be called a nation The defence of one's mother-tongue is a more powerful barrier against the intransition of foreigners than even the national barriers of rivers and mountains."

संविधान मूल में राष्ट्रभाषा में बने

१९ अगस्त, १९४७

श्री सेठ गोविन्ददास—सभापतिजी, एक बहुत बडा मसला अभी तक तय नही हुआ और वह यह है कि हमारी भाषा क्या रहेगी। आपने यह कहा था कि जो विधान हम तैयार करेंगे, वह मूल मे हमारी राष्ट्रीय भाषा मे होगा और उसका अनुवाद चाहे तो अंग्रेजी मे हो सकता है। तो मैं यह जानना चाहता हूँ, जो कमेटी बनाई जा रही है, वह कमेटी, हमारी कौन-सी भाषा रहेगी, इस पर भी विचार करेगी या नही? दूसरी बात मैं जानना चाहता हूँ कि जो बिल या मसविदा हम तैयार कर रहे है, वह जैसा आपने उस समय कहा था, वह मूल मे हमारी भाषा मे होगा या मूल मे अंग्रेजी मे होगा? मैं यह सुझाव रखना चाहता हूँ कि इन विषयो पर भी इस समय निर्णय हो जाना चाहिए और मूल में जो हमारा मसविदा हो, वह हमारी राष्ट्रीय भाषा में होना चाहिए। उसका अंग्रेजी अनुवाद हो सकता है। साथ ही हमारी कौन-सी भाषा रहेगी, यह भी इस समय निर्णय हो जाना चाहिए।

डा० अम्बेडकर के प्रस्ताव के समर्थन में

५ नवम्बर, १९४८

अध्यक्ष महोदय, मैं डा० अम्बेडकर द्वारा रखे गये प्रस्ताव के समर्थन के लिए खडा हुआ हूँ, किन्तु इसका यह अर्थ नही कि मैं उनके द्वारा कही गयी प्रत्येक बात से सहमत हूँ; वरन् इसके विपरीत मेरी सम्मति मे उनका भाषण उनके द्वारा रखे गये शानदार प्रस्ताव के उपयुक्त नही। उन्होंने कई विवादास्पद प्रश्न उठा दिये हैं और अच्छा होता, यदि वे उनका जिक्र भी न करते। इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह समर्थन मैं किसी उत्साह से नही कर रहा

हूँ, जिसकी इस समर्थन मे आवश्यकता है। यह प्रस्ताव और सारा सविधान सदन के सामने एक विदेशी भाषा मे रखा गया है। कल इस विषय पर काफी बहस हुई, अत: मै इस सबध मे अधिक नही कहूँगा। फिर भी मुझे इस बात पर खेद है कि हमने अपनी राष्ट्रभाषा का प्रश्न अभी तक तय नही किया। श्रीमन् यदि हम इस सम्बन्ध मे कल निश्चय कर लेते, तो आपको यह आश्वासन देने की जरूरत नही पडती कि यह सविधान सदन के सामने राष्ट्रभाषा स्वीकृत होनेवाली भाषा मे प्रस्तुत किया जायेगा और अब तक स्वीकृत धाराओ को भी पुन. उसी भाषा मे स्वीकार कराया जायेगा। सम्भवत: आपको याद होगा कि आपने इस प्रकार का एक आश्वासन दिया था और इस पर मेरे एक प्रश्न के उत्तर मे आपने कहा था कि सविधान का मूल प्रारूप राष्ट्रभाषा मे होगा। एक विदेशी भाषा मे सविधान स्वीकार करना, हमारे लिए न केवल लज्जा का विषय है, वरन् इससे भविष्य मे कई कठिनाइयाँ उत्पन्न होगी और हमारे देश पर अग्रेजी का प्रभुत्व स्थापित हो जायगा।

ब्रिटिश शासन-काल मे भी हमारे देश ने कई ऐसे विद्वानो को जन्म दिया, जो अग्रेजी नही जानते थे। उदाहरण के लिए प० सुधाकर द्विवेदी का नाम लिया जा सकता है। आजकल मौलाना अबुलकलाम आजाद हैं और उन्हे भी अग्रेजी का अच्छा ज्ञाता नही माना जा सकता। यदि हमने स्वतन्त्र भारत मे भी, उसकी अपनी राष्ट्रभाषा होते हुए भी, उसका संविधान अग्रेजी मे तैयार किया, तो हम सदा के लिए कम-से-कम सवैधानिक मामलों मे ऐसे व्यक्तियो पर निर्भर हो जायेंगे, जो अग्रेजी के विशेषज्ञ है, अत: मै फिर आपसे अपील करूँगा कि हमारा मूल सविधान हिन्दी मे होना चाहिए।

फिर यह संविधान अपूर्ण भी है। बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बाते इसमे सम्मिलित नही। निस्सदेह द्वितीय अध्याय मे धारा ९९ मे यह तो कहा गया है कि "ससद् मे कार्रवाई हिन्दी या अग्रेजी मे चला करेगी," किन्तु इसमे राष्ट्रभाषा के नाम का कोई जिक्र नही। हम धारा ९९ में सशोधन करके यह कमी पूर्ण तो कर सकते है, किन्तु फिर भी यह तब तक सभव नही, जब तक हम स्पष्ट रूप से यह घोषित नही कर देते कि हमारी राष्ट्रभाषा कौन-सी है। केवल यह कह देना कि ससद् की कार्रवाई अमुक भाषा मे चलेगी, पर्याप्त नही है। हमे स्पष्ट रूप से घोषणा करनी होगी कि हमारी राष्ट्र-भाषा यह है। हमे अपनी राष्ट्रलिपि के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार स्पष्ट घोषणा करनी होगी। इन दोनो ही मामलो मे हमारा सविधान अभी तक अधूरा है।

सम्भवत. आप को यह तथ्य भी विदित होगा कि आयरिश संविधान मे वहाँ के राष्ट्रध्वज का भी उल्लेख है। यद्यपि हमने एक प्रस्ताव द्वारा तिरगे को अपना

राष्ट्रध्वज स्वीकार कर लिया है; किन्तु सविधान के इस प्रारूप में इसका कोई उल्लेख नही। यह कमी अवश्य दूर होनी चाहिए।

हमारा सविधान राष्ट्रगीत के प्रश्न पर भी मौन है। हमारे प्रधान मंत्री श्री पंडित जवाहरलाल नेहरू कई अवसरों पर यह घोषणा कर चुके हैं कि इस सम्बन्ध मे अन्तिम निर्णय सविधान-सभा करेगी। मैं चाहता हूँ कि हमारे सविधान मे भी हमारे राष्ट्रगीत की स्पष्ट व्यवस्था होनी चाहिए।

मै उन सभी मामलों पर अपने विचार व्यक्त करना चाहूँगा, जिनके सम्बन्ध मे संविधान के वर्तमान प्रारूप मे कोई व्यवस्था नही दी गयी। मेरी सम्मति मे हिन्दी ही ऐसी एकमात्र भाषा है, जो इस देश की राष्ट्रभाषा हो सकती है। मै समझता हूँ इस सदन मे बहुत ही कम सदस्य ऐसे होगे, जिनकी राय में अँग्रेजी को इस देश की राष्ट्रभाषा बनाया जा सकता है। हिन्दी और हिन्दुस्तानी का विवाद भी अब समाप्त हो चुका है। धारा ९९ में यह स्पष्ट कह दिया गया है कि अब ससद् की कार्रवाई "हिन्दी अथवा अग्रेजी" मे चलेगी। मैं इस बात पर भी सहमत हूँ कि आगामी कुछ वर्षों मे ससद् की कार्रवाई मे अग्रेजी का प्रयोग किया जा सकता है। हमे किसी पर कोई चीज लादनी नही है। किन्तु, हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और देवनागरी हमारी राष्ट्रलिपि होनी चाहिए।

संविधान मे राष्ट्रध्वज के बारे मे भी स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। मेरा मत है कि यूनियन जैक की भाँति हमें अपने राष्ट्रध्वज को भी कोई सुन्दर नाम देना चाहिए। इसे 'सुदर्शन' नाम दिया जा सकता है। सुदर्शन उस वस्तु को कहते हैं, जो देखने में सुन्दर हो। प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने भी इस सदन मे राष्ट्र-ध्वज सम्बन्धी प्रस्ताव रखते हुए अपने भाषण मे कहा था कि यह देखने मे बहुत सुन्दर है। फिर इसमें एक चक्र भी है। भगवान विष्णु के चक्र का नाम सुदर्शन चक्र था; अतः इस ध्वज का नाम 'सुदर्शन' रखना अत्यधिक उपयुक्त होगा।

जहाँ तक राष्ट्रगान का प्रश्न है, मेरी सम्मति मे 'वन्देमातरम्' हमारा राष्ट्रगीत हो सकता है। हमारे स्वतन्त्रता सघर्ष का इतिहास वन्देमातरम् से जुड़ा है। यदि यह कहा जाये कि इसका स्वर वाद्ययन्त्रों के अनुकूल नही, तो यह कठि-नाई वाद्य विशेषज्ञों के प्रयास से दूर हो सकती है। महाकवि सूरदास और मीरा-बाई के पद एक नही अनेक स्वरों मे गाये जाते हैं; अत. यह सोचना गलत होगा कि वन्देमातरम् वाद्य के लिए उपयुक्त नही। कोई भी ऐसा व्यक्ति नही होगा जो कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर का आदर न करता हो; उनका गीत "जनगणमन" सन् १९११ में स्वर्गीय सम्राट जार्ज पचम की भारत यात्रा के अवसर पर रचा गया था। यह भारतमाता के प्रति न होकर स्वर्गीय सम्राट् के प्रति है। इसकी

हर भावना 'भारत भाग्य विधाता' अर्थात् सम्राट् के साथ सम्बन्धित है, जो हमारे गणराज्य के सिद्धान्तो के प्रतिकूल है। अतः केवल "वन्देमातरम्" ही हमारे राष्ट्र-गान के लिए उपयुक्त होगा।

यह सविधान अधूरा तो है ही, इसमे कुछ संशोधनो की भी आवश्यकता है। उदाहरण के लिए हमारे देश को इसमे 'इण्डिया' का नाम दिया गया है। विदेशों के लिए तो यह ठीक है; किन्तु यदि हमें यहाँ कोई जनसभा आयोजित करनी हो, तो क्या उसमे हम अपनी जनता को 'इण्डियन' कहकर सम्बोधित करेगे। जब हम अपने देश का सविधान अपनी ही राष्ट्रभाषा मे बनाना चाहते है और जब हम एक धर्म-निरपेक्ष राज्य का निर्माण कर रहे है, तब इसे 'इण्डिया' 'हिन्दुस्तान' का नाम देना उपयुक्त न होगा। मेरी सम्मति मे इस देश का प्राचीन नाम 'भारत' ही इसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त होगा।

एक और बात की भी मैं यहाँ चर्चा करना चाहूँगा। हमारा देश कृषिप्रधान है; अतः हमें कृषि के लिए उपयोगी सब वस्तुओ की रक्षा करनी होगी। इस दृष्टि से गाय की रक्षा हमारे लिए बहुत जरूरी है। गोरक्षा का प्रश्न हमारी सस्कृति के साथ भगवान् कृष्ण के समय से जुड़ चका है। हमारे लिए यह न केवल एक धार्मिक और आर्थिक, वरन् एक सास्कृतिक समस्या भी है। जिस प्रकार हमने अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिया है, उसी प्रकार गोवध को भी अपराध घोषित कर सकते है। हमें अपने संविधान में ही इसकी व्यवस्था करनी चाहिए। हम अपने इतिहास मे देखते है कि चाहे हिन्दू-युग हो अथवा मुस्लिम-युग, इस देश में केवल वही शासक सफल और लोकप्रिय हो सके है, जिन्होंने गोवध कानूनन निषिद्ध कर दिया था। इतिहास में इसके प्रमाण उपलब्ध हैं कि कई मुस्लिम शासकों ने ऐसा किया। गोवध-निषेध के लिए वित्तीय काम का भी बहाना लिया जा सकता है; किन्तु मेरा विश्वास है कि यदि हम गोरक्षा के नाम पर कर भी लगा दें; तो जनता इसे प्रसन्नतापूर्वक अदा करेगी। वित्तीय कठिनाइयों का बहाना ब्रिटिश शासनकाल में लिया जाता था; किन्तु मैं आशा करता हूँ कि अब गोरक्षा के मामले मे इस बहाने की आड़ नही ली जायेगी।

हमे अपने संविधान पर हर दृष्टि से विचार करना है और इसे हर प्रकार से पूर्ण बनाना है। हमारा देश कोई नया नही है, यह एक प्राचीन राष्ट्र है, इसका एक लम्बा इतिहास और समृद्ध संस्कृति है। हमे अपने सविधान का निर्माण इन सभी तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए करना चाहिए। हम मुस्लिम या किसी भी अल्पसंख्या को कठिनाई मे नही डालना चाहते; किन्तु हम उन व्यक्तियों की कभी खुशामद नही करेंगे, जो हमारे सामने द्विराष्ट्र का सिद्धान्त रखते हैं। मैं यह

स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सांस्कृतिक दृष्टि से केवल एक संस्कृति ही इस देश में रह सकती है। जिस सविधान को हम स्वीकृत करे, वह हमारी प्राचीन सस्कृति के अनुकूल होना चाहिए और हमारी राष्ट्रभाषा मे ही होना चाहिए।

हमे शताब्दियो के बाद अपना सविधान बनाने का अवसर मिला है ; अतः हमे ऐसा सविधान बनाना चाहिए, जिससे हमारी मातृभूमि के गौरव मे वृद्धि हो।

कारों की संख्या-तख्तियों पर हिन्दी अंक

१० जून, १९४९

सेठ गोविन्ददास—सभापतिजी, आप आज की कार्यवाही प्रारम्भ करे, इससे पहले मैं आपका ध्यान 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के ९ तारीख के अंक की ओर दिलाता हूँ, जिसमे कि उन्होने मोटर प्लेट्स के जिस प्रश्न को मैंने यहाँ उठाया था, उस सम्बन्ध मे दिल्ली पुलिस ने जो कुछ होम डिपार्टमेंट को लिखा है, उसका जिक्र किया है। वे लिखते है :—

"पता लगा है कि गृहमंत्रालय का ध्यान १९४९ के भारतीय मोटर वेहीकल्स अधिनियम १९४९ की ओर आकृष्ट किया गया है, जिसके अनुसार सख्या-तख्तियो पर गाडी की सख्या अंग्रेजी अक्षरो तथा अको मे होनी चाहिए। पत्र मे आगे चलकर यह लिखा है कि भारतीय मोटर वेहीकल्स अधिनियम समस्त देश में लागू है और दिल्ली प्रशासन को इसमें सशोधन करने की शक्ति नही है।"

मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि सयुक्त प्रान्त मे और मेरे मध्य प्रान्त मे भी इसी कानून के अनुसार सब कार्यवाही होती है। इतने पर भी वहाँ की मोटरो के नम्बर, मिनिस्टरो की मोटरों तक के नम्बर, हिन्दी में है और यह भी आप जानते हैं कि पार्लियामेट के नियमों के मुताबिक पार्लियामेट मे जो भाषण होते है, वे भी अग्रेजी में होने चाहिए, पर हमारी पार्लियामेट के स्पीकर श्री मावलकर साहब ने अनेक बार यह कहा है कि वर्तमान परिस्थिति जब बदल गई है, तब इस प्रकार के नियमों को लागू क्यो किया जाय। पार्लियामेट मे बराबर हिन्दी में भाषण होते है। मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि दिल्ली पुलिस एडमिनिस्ट्रेशन की जो दलील है, वह कामनसेन्स और वर्तमान परिस्थिति के प्रतिकूल है और बड़ी बेहूदी दलील है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि कोई खास परिस्थिति उत्पन्न होने न पाये ; इसलिए इस सम्बन्ध मे आपको कुछ-न-कुछ करने की कृपा करनी चाहिए।

राष्ट्रभाषा के प्रश्न का निर्णय

३० जुलाई, १९४९

सेठ गोविन्ददास—सभापतिजी, इसके पहले कि हम आगे बढे, मै एक बात की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। जब से हम लोग यहाँ आये है, तब से राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध मे तरह-तरह की बाते सुन रहे है। कहा यह जा रहा है कि राष्ट्रभाषा का सवाल पार्लियामेट के ऊपर छोड दिया जायगा। आपने बार-बार इस बात को कहा था कि हम केवल राष्ट्रभाषा का प्रश्न ही यहाँ हल न करेंगे, बल्कि हम अपना विधान भी अपनी भाषा मे बनायेगे। अब यह अन्तिम अधिवेशन है और मुझे इस बात का पता लगा है कि जो कमेटी आपने विधान के अनुवाद के सम्बन्ध मे नियुक्त की थी, उसने उन धाराओ का हमारी भाषा में अनुवाद कर लिया है, जो हम यहाँ पास कर चुके है। मै चाहता हूँ कि आप इन अफवाहो का खडन कर यह निश्चय कर दें कि राष्ट्रभाषा का सवाल हम अपनी पार्लियामेंट पर न छोड़कर इस विधान-परिषद् मे निश्चित करेंगे , क्योंकि उसके बिना मेरा अपना मत है कि सारा विधान ही अधूरा रहता है। इसी के साथ मै यह चाहता हूँ कि आप तीन विषयो के लिए—हमारी राष्ट्रभाषा कौन-सी होगी, हमारा राष्ट्रीय गीत क्या होगा और हमारे देश का क्या नाम होगा, निर्णय करने की तारीख मुकर्रर कर दीजिए, जिससे लोगों को मालूम हो जाये कि अमुक तारीखों पर यह सवाल लिये जायेंगे।

राजभाषा की धाराओं पर

१२ सितम्बर, १९४९

सेठ गोविन्ददास—सभापतिजी, आज के दिन को मैं अपने जीवन के दिनों मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। आज जो कुछ हो रहा है, उससे मुझे हर्ष भी कम नही है। मै आपको भी इस बात के लिये धन्यवाद देता हूँ कि मैने समय-समय पर इस विषय को अनेक रूपो मे आपके सामने उपस्थित किया और आपने मेरी बातें सुनी। आपके पहले इस विधान-परिषद् के प्रथम दिवस, जब आप के ही प्रान्त के श्री सच्चिदानन्दसिह हमारे सभापति थे, उस दिन भी मैने इस विषय को उठाया था। उसके पश्चात् मैं इस विधान-परिषद् के सदस्यो को इस सम्बन्ध मे बहुत कष्ट देता रहा हूँ। इस विधान-परिषद् मे घूम-घूम कर इस हाल में मीलों चल कर और उनके घरो पर जाकर, उनके प्रान्तों मे जाकर इस विषय पर मै इस विधान-परिषद्

के सदस्यों से अनुनय-विनय करता रहा हूँ और मुझे इस बात पर भी बडा हर्ष है कि हमारे प्रधान मन्त्रीजी के शब्दो मे ९५ प्रतिशत बातो पर हम लोगो का एक-मत भी हो गया है ; परन्तु एक बात मैं अवश्य कहना चाहता हूँ कि जिन विषयों पर हमारा मतभेद है, उन विषयों मे भी हमे शान्ति से हल करना चाहिए। यदि हम ऐसे विषयो पर मत भी ले, मत-विभाजन भी कराये, तो भी उससे किसी प्रकार की कटुता नही आने देनी चाहिए। हम लोगो ने प्रजातत्र को स्वीकार किया है और प्रजातत्र मे बहुमत से ही सारे काम चल सकते है। यदि किसी विषय पर मत-भेद होता है, तो उसका निर्णय केवल बहुमत से ही हो सकता है और बहुमत जो भी निर्णय करे, उसे अल्पमत वालों को सिर झुका कर स्वीकार करना चाहिए, बिना किसी प्रकार की कटुता के आप ने भी यही अपील की थी। अभी श्री गोपाल-स्वामी आयगरजी ने भी यही अपील की और मैं भी यही अपील करना चाहता हूँ।

मै अपने दक्षिण भारत मे माननीय सदस्यों और जिन प्रान्तो मे हिन्दी भाषा नही बोली जाती, उन प्रान्तो के सब माननीय सदस्यो का अत्यन्त अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने कम-से-कम एक बात स्वीकार कर ली और वह बात यह है कि चाहे आप उसे राष्ट्रभाषा कहे, चाहे आप उसे राज्य-भाषा कहे, वह हिन्दी ही हो सकती है और उसकी लिपि देवनागरी , जैसा कि मैने अभी कहा था, हमारे प्रधान मत्रीजी के शब्दो मे भाषा का विषय ९५ प्रतिशत हल हो गया है। जो पाँच प्रतिशत बाकी है, उसमे कुछ सैद्धान्तिक बाते हैं। उन सिद्धान्त की बातों को यदि हमारे दक्षिण भारत के माननीय सदस्य और दूसरे प्रान्तों के सदस्य स्वीकार नही करते, तो उन्हें हमें भी वैसी ही स्वतत्रता देनी चाहिए कि हम भी अपने सिद्धान्तों पर स्थित रहें और बिना किसी प्रकार की कटुता आये हम ऐसी बातों को बहुमत से निपटा लें।

अकों का प्रश्न लीजिये। अको का एक प्रश्न है, जो यहाँ पर भी सभी लोगों के हृदयो मे एक क्षोभ उत्पन्न कर रहा है। मेरी समझ मे नही आता कि इसमें क्षोभ की क्या आवश्यकता है। मैं माननीय सदस्यों का ध्यान गत दो या तीन वर्षों की घटनाओ की ओर ले जाना चाहता हूँ। जब पहले-पहल मैंने भाषा और लिपि का प्रश्न उनके सामने रखा, तब अको का प्रश्न उन्होंने नही उठाया था। आज यह प्रश्न जितने महत्त्व का हमारे दक्षिण भारत के बन्धुओ को दीखता है, उस समय उन्होने इसे उस दृष्टि से नही देखा था। मैं उनकी स्मरण-शक्ति को ताजा करने के लिये उस फारमूला को यहाँ पढ़ना चाहता हूँ, जिस पर उन्होने बहुत बडी सख्या में हस्ताक्षर किये थे। वह फारमूला मैं यहाँ पढ़ता हूँ, हिन्दी और अग्रेज़ी दोनो मे।

"हम लोग इस बात के पक्ष मे हैं कि भारत के विधान में यह रखा जाये कि राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि हिन्दी और देवनागरी होगी। राष्ट्र सघ पार्लियामेन्ट मे सब काम हिन्दी और देवनागरी अक्षरों के द्वारा अथवा उस समय तक के लिये जो सघ पार्लियामेन्ट निश्चित करे, अंग्रेजी मे होगी।"

अंग्रेजी मे वह इस प्रकार है:—

"We support the view that the Union Constitution should lay down that the national language and character shall be Hindi and Devanagari respectively, that in the Federal parliament business shall be transacted in Hindi written in Devanagari character or, for such period as the Federal parliament decides in English."

काजी सैयद करीमुद्दीन (मध्यप्रान्त और बरार मुस्लिम)—एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्, सभा मे यह कौन-सा लेख पढा जा रहा है?

सेठ गोविन्ददास—यह वह डाकूमेंट है, जिस पर यहाँ के सदस्यो ने हस्ताक्षर किये थे और जो फारमूला भाषा के सम्बन्ध मे उन्होने स्वीकार किया था।

इस फारमूले पर साधारण सदस्यों के हस्ताक्षर नही थे। हमारे मद्रास के श्री गोपालस्वामी आयगर ने इस पर हस्ताक्षर किये है। डा० पट्टाभि सीतारमैया ने इस पर हस्ताक्षर किये है। श्री प्रोफेसर रगा, श्री अलगेसन, श्री थिरूमल राव, श्री अनत शयनम आयगर, श्री काला वेकट राव के इस पर हस्ताक्षर है।

श्री काला वेकटाराव—मद्रास (जनरल) मेरा नाम क्यों लिया जा रहा है? मेरे प्रति जो निर्देश है, उसे मैं नही समझता हूँ।

सेठ गोविन्ददास—मैने जिस फारमूला को अभी पढा है, उस पर आपने हस्ताक्षर किये है।

मैं यह कहना चाहता हूँ कि जिस समय आपने देवनागरी को स्वीकार किया था, उस समय आपने देवनागरी के अकों को भी उसके साथ स्वीकार किया था, अन्यथा आप उस समय भी यह कहते कि इसमे इटरनेशनल न्यूमरल्स की बात रक्खी जानी चाहिए।

इसमे हमारे बम्बई के बन्धुओ के हस्ताक्षर है। श्री निजलिंगप्पा, श्री जेधे, श्री पाटस्कर, श्री गुप्ते इत्यादि के।

हमारे बगाल के बन्धुओ के भी इस पर हस्ताक्षर हैं—श्री मैत्र, श्री मजूमदार श्री गुहा, श्री सुरेशमोहन घोष और दूसरे सज्जन।

उडीसा के श्री विश्वनाथदास, श्री बी० दास, श्री लक्ष्मीनारायण साहु, श्री युधिष्ठिरसिंह, आसाम के श्री रोहिणीकुमार, श्री चालिहा ने भी इस पर हस्ताक्षर किये है। हिन्दी भाषा-भाषी सभी सदस्यो के इस पर हस्ताक्षर हैं।

तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि यह न्यूमरल्स का जो सवाल उठा, वह सवाल बहुत पीछे और हाल का ही उठा हुआ है और इस सवाल को उस समय किसी ने महत्त्व नही दिया था।

मैं यह नही कहता कि आज इस विषय को उठाने का किसी को अधिकार नहीं है। अवश्य है। मेरे कहने का मतलब केवल यह है कि जब वे स्वय किसी समय देवनागरी लिपि को, जिस रूप मे वह है, उस रूप मे स्वीकार करना चाहते थे, तो उनको उसके अको को भी स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि अक लिपि के अन्दर होते है, लिपि के बाहर नही होते। और उस समय जब वे इस बात को स्वीकार कर रहे थे, तो आज बिना किसी रोष के, बिना किसी क्रोध के और बिना किसी क्षोभ के उन्हे कम-से-कम हमे अपने मत पर स्थित रहने की स्वतत्रता देनी चाहिए। उन्होने यदि अपना मत बदल दिया है और वह विरोध मे वोट करना चाहते हैं, तो करे, परन्तु हम यदि अपने पुराने मत पर स्थित है, तो उन्हे हमारे प्रति किसी रोष की भावना को नही रखना चाहिए।

अब दूसरी बातो को हम ले। श्रीयुत आयगर साहब ने जो धारा यहाँ पर पेश की है, उसमे उन्होने यद्यपि हिन्दी और देवनागरी लिपि को स्वीकार किया है, पर उसी के साथ उस धारा को ध्यानपूर्वक देखने से यह प्रयत्न दिखाई देता है कि वह समय दूर रखा जा रहा है, जब कि हिन्दी अग्रेजी का स्थान ले सके। इस विधान-परिषद् में दो प्रकार के माननीय सदस्य दिखते हैं—एक वे है, जो हिन्दी और देवनागरी लिपि को स्वीकार करते हैं, परन्तु उसे दूर-से दूर टालना चाहते है। दूसरे वे लोग है, जो अग्रेजी के स्थान पर हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को जल्दी-से-जल्दी ले आना चाहते है। इस सम्बन्ध में काग्रेस की कार्यकारिणी का जो प्रस्ताव है, उसकी ओर मैं माननीय सदस्यों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। काग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने कहा है कि हमको धीरे-धीरे इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि १५ वर्ष मे अग्रेजी का स्थान हिन्दी ले ले और १५ वर्ष में या उसके पश्चात् इस देश में अग्रेजी का स्थान न रहे; पर जो भाषण श्रीयुत गोपालस्वामी आयंगरजी ने आज दिया है, उसमे उन्होने कहा कि १५ वर्ष के बाद भी एक लम्बे समय तक हिन्दी को अग्रेजी का स्थान नही लेने देना चाहिए, कम से-कम हम लोगों का यह मत नही है यह मैं कह देना चाहता हूँ। मेरी स्पष्ट राय है कि यदि अंग्रेजी को देश से जाना है, तो वह जल्दी-से-जल्दी जाय। यदि हम १५ वर्ष

का समय स्वीकार करते है, तो यह मतलब नही है कि उससे पहले हिन्दी अग्रेजी का कोई भी स्थान नही ले। आप जानते है, इस भवन के सारे सदस्य जानते है कि पहले हमारा यह मत था कि अग्रेजी का स्थान हिन्दी कितने समय मे ले, इस विषय को पार्लियामेन्ट पर छोड दिया जाये। जो फारमूला मैने अभी पढा, उसे, जो हिन्दी भाषा-भाषी नही है, उन्होने भी स्वीकार किया था। फिर हम पॉच वर्ष पर आये। उस समय हमने सोचा था कि पॉच वर्ष मे यदि हम प्रयत्न करेंगे, तो हिन्दी को अग्रेजी के स्थान पर प्रतिष्ठित कर सकेंगे। उसके बाद यहॉ पर राष्ट्र-भाषा कान्वेन्शन हुआ। यद्यपि उसको हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बुलाया था, पर उसमे किस प्रकार के महानुभाव आये थे, इस पर विचार कीजिये।

मैं कहना चाहता हूँ कि इस प्रकार का कान्वेशन इससे पहले इस देश मे कभी नही हुआ। उसमे बगाल से डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी और श्री सजनीकात दास, जो कि बगीय साहित्य-परिषद् के मत्री है, आये थे। उसमें करनाटक से भी श्रीयुत एस० कृष्ण शर्मा आये थे, जो कन्नड़ साहित्य-परिषद् के मत्री है। उस में मलयालम के महाकवि बलातोल पधारे थे, जिनका मलयालम-साहित्य मे वही स्थान है, जो बगीय साहित्य मे रवीन्द्र बाबू का था। मलयालम के श्री कुशान-राज भी उसमे आये थे। मराठी के महामहोपाध्याय श्री कानेजी उसमे नही आ सके; उन्होने उसके लिये अपना मत भेजा था। उड़ीसा से भी आर्तवल्लभ महन्ती आये थे। तमिल के श्री नीलकठ शास्त्री और डाक्टर राघवनजी आये थे। तेलगू के श्री सोमय्याजी आये थे और श्री विश्वनाथ सत्यनारायणजी पधारे थे। इस प्रकार इस परिषद् को यद्यपि हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बुलाया था; पर इसमे अन्य भाषाओं के बड़े-बड़े विद्वानों ने भाग लिया था और उन्होने यह तय किया कि अग्रेजी का स्थान हिन्दी को दस वर्ष मे लेना चाहिए। तो पॉच वर्ष से हम दस वर्ष पर आ गये और हमने यह स्वीकार किया कि धीरे-धीरे दस वर्ष मे हिन्दी अग्रेजी का स्थान ले ले। उसके पश्चात् जब हमारे दक्षिण भारत के बन्धुओ ने कहा कि दस वर्ष का समय कम मालूम होता है और यह पन्द्रह वर्ष होना चाहिए, तो हमने १५ वर्ष स्वीकार कर लिया। मै यह नही कहता कि ऐसा करके हमने उन पर कोई उपकार किया है। उपकार तो उनका हम मानते है और उनके अनुगृहीत है कि उन्होने हिन्दी को राष्ट्रभाषा और देवनागरी को राष्ट्रलिपि स्वीकार किया, पर हम यह अवश्य कहना चाहते हैं कि उनके सुभीते के लिये हमने स्वीकार किया कि दस वर्ष के स्थान पर १५ वर्ष कर दिये जायें, तो हमे आपत्ति नही। हमं इस बात को जानते है कि किसी व्यक्ति के जीवन मे पॉच या दस या पन्द्रह वर्ष कोई चीज हो सकते हैं; परन्तु देश के जीवन मे यह समय बहुत बडा समय नही है।

इसलिये हमने दस वर्ष के स्थान पर १५ वर्ष को स्वीकार किया। सवाल यह है कि हम १५ वर्ष मे अग्रजी के स्थान पर हिन्दी को लाना चाहते है, या पन्द्रह वर्ष मे भी नही। काग्रेस कार्यकारिणी ने इस सम्बन्ध में अपना स्पष्ट मत दिया है। जो राष्ट्र-भाषा कन्वेन्शन हुआ, उसने भी इस विषय मे साफ तौर पर कहा है। फिर आज श्री गोपालस्वामी आयगरजी यह कहते है कि वह तो १५ वर्ष के बाद भी एक बडे लम्बे समय को देखते है, जिस समय कि हिन्दी अग्रजी का स्थान ले सकेगी। मैं बडे अदब के साथ उनसे यह कहन चाहता हूँ कि कम-से-कम हम लोग इस बात को स्वीकार नही करते। यह हमारा स्पष्ट मत है।

तीसरा विषय जिस पर मैने सुधार पेश किया है, वह यह है कि जिन प्रान्तों मे हिन्दी को स्वीकार कर लिया गया है और जिन प्रान्तों की अदालतो मे आज हिन्दी चल रही है, वहाँ पर हम क्यो अग्रजी को थोपना चाहते हैं। आप सयुक्त प्रान्त को ही लीजिये। वहाॅ पर सारे बिलो के मसविदे, सारे प्रस्ताव, सारे प्रश्न हिन्दी मे ही होते है। अब जो आयगरजी की धारा यहाँ पेश हो रही है, वह अग्रेजी मे हो, यह तो मामले को आगे न बढा कर पीछे हटाना हुआ। इसको हम भला कैसे स्वीकार कर सकते है कि जिन प्रान्तो मे अभी भी हिन्दी मे काम चल रहा है, वहाॅ भी अग्रेजी को लादा जाये। जहाॅ कचहरियो मे अभी भी हिन्दी मे काम चल रहा है, वहाॅ भी अग्रेजी को लादा जाये। यह तीसरा विषय है, जिस मे हम बहुत मतभेद रखते है, अपने दक्षिण भारत के बन्धुओ से।

अब मुझे कुछ अन्य बातें कहनी है। हम हिन्दी का पक्ष लेने वालो पर एक आक्षेप होने वाला है कि हम इस विषय को साम्प्रदायिकता की दृष्टि से देखते हैं। यह आक्षेप हमारे बडे-बडे नेताओ ने हम पर किया है। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि जहाॅ तक हम लोगों का सम्बन्ध है, हम इस विषय को साम्प्रदायिकता की दृष्टि से जरा भी नही देखते। हम इस विषय को राष्ट्रीय दृष्टि से देखते है। मैं अपने सम्बन्ध मे आपसे कह सकता हूँ कि ३० वर्ष के सार्वजनिक जीवन मे मै आज तक किसी भी साम्प्रदायिक सस्था का सदस्य नही रहा हूँ। यह बात मौलाना अबुल-कलाम साहब जानते हैं कि जब सन् २१ मे खिलाफत का आन्दोलन चला था, तो मैं स्वय सेन्ट्रल खिलाफत कमेटी का सदस्य था। दूसरे लोगों को आप ले लीजिये। जैसे टडनजी है और दूसरे लोग, जो आज हिन्दी के आन्दोलन मे किसी प्रकार का भाग ले रहे है, क्या कभी उनका किसी प्रकार की भी साम्प्रदायिक सस्था से सम्बन्ध रहा है।

अपने सम्बन्ध मे इस विषय से सम्बन्ध रखने वाली दो बाते मैं आपको और बताना चाहता हूँ। एक जमाना था कि जब हमारे जबलपुर नगर मे हिन्दी मस-

लमानो के दंगे हुआ करते थे । उस समय हमारे यहाँ एक मस्जिद तोड़ दी गई। उस मस्जिद को मैने वहाँ अपने धन से बनवा दिया। हमारे प्रान्त के खंडवा नगर मे कुछ लाख रुपया लगा कर मेरी माता के नाम पर मेरे पिताजी ने एक धर्मशाला बनवाई है। इस धर्मशाला मे लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की स्थापना की गई है। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा विनोबा भावेजी ने की। इस मन्दिर मे लक्ष्मीनारायण की मूर्ति के साथ सब धर्मो के ग्रन्थों की भी स्थापना की गई है। वहाँ कुरान की स्थापना की गई है, वाइबिल की स्थापना की गई है और बौद्ध धर्म के ग्रथों की स्थापना की गई है, जैन धर्म के ग्रन्थो की स्थापना की गई है, सिख धर्म और पारसी धर्म के ग्रन्थ भी वहाँ स्थापित है। सब धर्मो के ग्रन्थो की वहाँ पर इज्जत के साथ स्थापना की गई है। हिन्दी-आन्दोलन करने वालों को साम्प्रदायिक कहना, बडा भारी अन्याय है। उर्दू भाषा केवल मुसलमानों की ही अकेली भाषा है, यह मैं नही कहता। मैं यह मानता हूँ कि उर्दू भाषा मे इस देश के बडे-बड़े हिन्दू विद्वानो ने, कवियो ने भी रचना की है। मगर मै एक बात कहे बिना नही रह सकता कि उर्दू भाषा अधिकतर देश के बाहर की चीजो को देखती है। आप उर्दू के साहित्य को अच्छी तरह देख सकते है। साहित्य का मुझे थोडा-बहुत ज्ञान है। आप उर्दू-साहित्य को देखेगे, तो आप को कही भी हिमालय का वर्णन नही मिलेगा। आपको उसकी जगह कोहकाफ का वर्णन मिलेगा। हमारे देश की कोयल को आप कभी उसके साहित्य मे नही पायेगे। आपको सिर्फ बुलबुल का वर्णन मिलेगा। भीम और अर्जुन की जगह पर आपको रुस्तम का वर्णन मिलेगा, जिसका इस देश से कोई भी सम्बन्ध नही है, इसलिए मै कहना चाहता हूँ कि हम पर साम्प्रदायिकता का जो आक्षेप हो रहा है, वह बिल्कुल गलत है। मै आपसे यह बात उर्दू के किसी द्वेष की वजह से नही कह रहा हूँ। हम उर्दू से प्रेम रखते है और बराबर उससे हमारा प्रेम रहेगा। मगर मैं यह अवश्य कहूँगा कि हिन्दी के समर्थक साम्प्रदायिक नही, जो उर्दू का समर्थन करते है वे साम्प्रदायिक है।

हमाशा देश सेक्यूलर स्टेट है और हम सब लोग इसको स्वीकार करते है। हम सब धर्म वालों को एक ही दृष्टि से देखते हैं। हम किसी धर्म के बीच मे रोड़ा अटकाना नही चाहते , पर हम इस बात को मानते है कि सेक्यूलर स्टेट होते हुए भी हमारे देश मे दो सस्कृति नही है।

चीन में भी मुसलमान रहते हैं, रूस मे भी मुसलमान रहते है, मगर चीन और रूस के मुसलमानो और वहाँ के अन्य धर्मावलबियों मे कोई भेद नही है। वहाँ के निवासियों के नाम भी हम देखें, तो हमे कोई अन्तर मालूम नही पडता। उनकी पोशाक, उनकी भाषा और उनकी संस्कृति एक ही है। यह बात सत्य है कि सेक्यू-

लर स्टेट को हमने मान लिया है। मगर हमने इसका यह अर्थ तो कभी नही समझा कि सेक्युलर स्टेट मानना अनेक सस्कृतियाँ मानना है। यह एक पुराना देश है और इसका इतिहास पुराना है। देश मे हजारो वर्षों से एक ही सस्कृति चली आई है और वह परम्परा अभी तक कायम है। इस परम्परा को रखने के लिये और इस बात का खडन करने के लिये हमारी दो सस्कृतिया है, हम इस देश मे एक भाषा और एक लिपि रखना चाहते है।

प्रान्तीय भाषाओं से हमारा कोई द्वेष नही है। प्रान्तीय भाषाओं की तरक्की वगैर केन्द्रीय भाषा की भी उन्नति नही हो सकती। यह बात मै अपने मित्रो को खुश करने के लिये नही कर रहा हूँ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन मे सभापति के नाते मैंने जो भाषण मेरठ मे दिया था, उस वक्त भी मैने यह बात साफ कर दी थी कि हर प्रान्तीय भाषा की भी उन्नति होनी चाहिए और अपने-अपने प्रान्त मे उसका सर्वोच्च स्थान होना चाहिए। वहाँ की शिक्षा का माध्यम, वहाँ की अदालतो की भाषा, वहाँ की असेम्बली की भाषा, प्रान्तीय भाषा हो। प्रान्तीय भाषा के सिवाय प्रान्तो मे रहने वाली अन्य जनता की भाषा को उस प्रान्त मे मान्य न किया जाये, यह भी मै नही कहता , पर जिस प्रकार काग्रेस वर्किंग कमेटी ने अपने प्रस्ताव मे कहा और स्वीकार किया है कि अगर किसी प्रान्त मे २० प्रतिशत व्यक्ति इस बात की इच्छा करे कि अमुक भाषा उस प्रान्त मे स्वीकार की जाये, तभी यह हो। अगर एक प्रतिशत, दो प्रतिशत व्यक्ति इस बात की माँग करे कि उनके प्रान्त मे दूसरी भाषा भी चले, तो उनके प्रान्त के विकास मे बाधा डालना होगा ; इसलिये मैने एक और संशोधन भेजा है, जिसमे यह कहा गया है कि अगर किसी प्रान्त मे २० प्रतिशत व्यक्ति यह माँग करे कि अमुक भाषा वहाँ और स्वीकार की जाये, तो जैसा कि काग्रेस वर्किंग कमेटी ने अपने एक प्रस्ताव मे मान लिया है, वहाँ पर यह बात की जा सकती है। अग्रेजी का स्थान हिन्दी जल्दी-से-जल्दी ले ले, यह हमारा सबसे बडा लक्ष्य है। इसके लिये मैंने अपने सशोधन मे जो बात कही है, वह यह है कि एक कमीशन स्थापित हो, एक पार्लियामेटरी कमेटी स्थापित की जाये, एक प्रकार की दो चीज़े न हो , बल्कि एक ही चीज हो, यानी पार्लिया-मेन्टरी कमेटी। पार्लियामेटरी कमेटी को यह काम सौप दिया जाय कि वह १५ वर्ष के अन्दर धीरे-धीरे हिन्दी को अग्रेजी के स्थान पर किस प्रकार ला सकती है।

अन्त मे मै कहना चाहता हूँ कि स्वतत्रता के साथ, स्वतत्र भारत कैसा होगा इसकी भी हमने कल्पना की थी, इस देश की जनता ने भी कल्पना की थी। वह कल्पना तब तक पूरी नही हो सकती, जब तक कि हम भाषा के प्रश्न को हल न कर

ले। स्वराज्य का अर्थ इस देश के लोग तभी समझेगे, जबकि भाषा का प्रश्न पूरी तरह से हल हो जायेगा।

मुझे इस बात की वडी खुशी है कि हिन्दी भाषा को इस देश के सभी निवासी राष्ट्रभाषा के रूप मे, राज्यभाषा के रूप मे, स्वीकार करने के लिये तैयार है। हमे इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि भाषा के विषय में किसी प्रकार की कटुता न आने पाये। जहाँ तक हिन्दी का सवाल है, उसको पडित जवाहरलाल नेहरू का भी आशीर्वाद प्राप्त है। और आज नही, यह आशीर्वाद उसे १८ वर्ष पहले प्राप्त हो चुका था। इस सम्बन्ध मे उन्होने १८ वर्ष पहले जो एक पत्र लिखा था, वह मै आपको पढ कर सुनाता हूँ—

"कोलम्बो १६-५-३१

मुझे वहुत खेद है कि मैं इस समय मदुरा नही आ सकता। मै चाहता था कि मैं वहाँ जाऊँ और तमिलनाड प्रान्त के भाइयो से मिलूँ और अगर उनकी कुछ सेवा कर सकूँ, तो वह करूँ। खासकर मै हिन्दी-सम्मेलन मे हिस्सा लेना पसन्द करता। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा होना तो पूरी तौर से तय हो गया है और काग्रेस का कार्य भी अब बहुत-कुछ हिन्दी में होता है। यह बहुत खुशी की बात है कि तमिलनाड-प्रान्त मे हिन्दी का प्रचार खब हो रहा है। इस शुभकार्य मे मै खुशी से सहायता देता, लेकिन मजवूरी से नही आ सकता।

मै आशा करता हूँ कि हिन्दी-सम्मेलन सफलता से होगा और उसके कारण हिन्दी-प्रचार और भी वढेगा।

—जवाहरलाल नेहरू"

यह पडितजी ने १८ वर्ष पहले लिखा था और मुझे इस बात को देखकर हर्ष होता है कि १८ वर्ष पहले उन्होने जो भविष्यवाणी की थी, उसको आज हम पूरा करने के लिये यहाँ पर एकत्रित हुए है।

राज-भाषा विधेयक पर

२३ अप्रैल, १९६३

डा० गोविन्ददास—उपाध्यक्ष महोदय, अभी अध्यक्ष महोदय ने जाते हुए एक बात कही थी कि यह मामला बडा नाजुक है। मैं उन से ..

Shri S. Kandappan (Tiruchengode) : Sir, I want to make one request.

डा० गोविन्ददास—जी नही, मै अपनी भाषा मे बोलूगा।

Mr Deputy-Speaker : Order, order. He is not yielding.

डा० गोविन्ददास—उपाध्यक्ष महोदय, मैं वर्षो तक यहाँ पर ...

Shri S. Kandappan : Sir, we are discussing a very important Bill, on which point I think even Dr. Govind Das will agree. We have to make one request to him We will not be able to follow his speech here. Even if he prefers to deliver his speech in Hindi, at least he can give us a translation of it in English so that we are able to follow what he says.

Mr. Deputy-Speaker : It is left to Dr. Govind Das. Both Hindi and English can be used here for speeches.

Shri Thirumala Rao (Kakinada) : Sir, may I make one appeal to you. Dr. Govind Das is going to advance arguments on behalf of Hindi, and they are mainly addressed to the non-Hindi-speaking areas. He is one of the leaders of the movement. I think all Members in this House including the Members from the South are to fully understand the weight of his arguments. I would, therefore, request him to speak in English (*Interruption*).

डा० गोविन्ददास—उपाध्यक्ष महोदय, मुझे वडा दु.ख है कि मै बीसो वर्षो तक यहा पर अग्रेजी मे बोलता रहा हूँ, और उस के बाद मैंने प्रतिज्ञा की कि मै अपने देश मे अपनी भाषा मे बोलूगा और विदेशोमे अग्रेंजी मे बोलगा ; इसलिए अपनी

प्रतिज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है। अन्त मे जो बाते मै यहां कह रहा हूँ, उनको अग्रेजी में भी कह दूंगा।

मै कह रहा था, आप से, कि अध्यक्ष जी एक बात कह कर गये है कि यह मामला बड़ा नाजुक है। इसमे कोई सदेह नही है। मेरे लिए यह इसलिये और भी नाजुक हो जाता है कि जिन पडित जवाहरलालजी के नेतृत्व मे मैने पिछले ४३ वर्ष तक काम किया, सार्वजनिक क्षेत्र मे, जिन श्री लालबहादुरजी के साथ-साथ मै न जाने कितने वर्षो तक काम करता रहा हूँ, उनके विरोध मे शायद मुझे यहा कुछ कहना पडेगा।

शास्त्रीजी ने अपने भाषण मे कहा कि इस मामले मे सदस्यो की स्ट्राग व्यूज है। बिलकुल ठीक है। इस सम्वन्ध मे बडा बुनियादी मतभेद है, और मै उनमे से एक हूँ। मैने ५० वर्ष तक, अपनी सारी जिन्दगी मे, यह काम किया है, जिसके विरुद्ध जाना मेरे लिए, जीवन के इस सन्ध्या-काल मे, सम्भव नही है ; लेकिन मै इतना पडितजी और शास्त्रीजी को आश्वासन देना चाहता हूँ कि इस विधेयक का विरोध करते हुए भी, उनके मतों का विरोध करते हुए भी, उनके प्रति मेरी वैसी ही श्रद्धा है, वैसा ही विश्वास है, जैसा कि अब तक रहा है, और भविष्य मे भी वैसा ही रहने वाला है। मै जीवन भर कांग्रेसवादी रहा हूँ, और चाहे आज मैं इस विधेयक के विरुद्ध होऊँ, लेकिन इसके बाद भी मै काग्रेस मे ही रहने वाला हूँ, किसी दूसरी सस्था मे जानेवाला नही हूँ।

अभी यहा कुछ लोगो ने कहा कि हिन्दी कभी केन्द्र मे आनेवाली नही है। जो लोग ऐसा कहते हैं, वे हिन्दी के ही विरोधी नही है, मै तो कहूगा कि भारत का विभाजन चाहते हैं और स्वयं अपनी भाषा के विरुद्ध है। कुछ उनमे ऐसे भी है, जो इस देश मे निवास करते है और उनकी दृष्टि अभी भी इग्लैड की तरफ है।

शास्त्रीजी ने उदारता की बात कही। मै उनसे बिलकुल सहमत हूँ। मै आज एक लम्बा भाषण देने वाला हूँ, क्योंकि यह मेरा विषय रहा है, लेकिन मै उनको इस बात का आश्वासन देता हूँ, कि आरम्भ से अन्त तक वे उसमे कटुता का एक शब्द कही नही पायेगे।

मानव-समाज मे जब कभी भी कोई बडी बात हुई है, तब उसके लिए वातावरण तैयार किया गया है। हमारे देश की आधुनिक स्वतन्त्रता का भी यही इतिहास है। हमारे देश का वर्तमान वायु-मडल तैयार किया था राष्ट्रपिता ने, जिन्होने इस नये भारत का निर्माण किया है ; और उन्होने इस सम्बन्ध मे क्या कहा था, यदि मै यहां उसे पढ दू, तो कोई अनुचित बात न होगी। इसी के साथ मै एक बात और कहना चाहता हूँ। आज जो कुछ मैं कहूंगा, वह अपनी ओर से बहुत कम होगा,

जो कुछ मैं यहां पर कहूँगा, वह यहा के महापुरुषो की ओर से ही कहूगा। गाधीजी ने सन् १९१८ मे कहा था, जब कि देश का नेतृत्व उनके हाथ मे आ रहा था—

"यह भाषा का विषय बडा भारी और बडा ही महत्त्वपूर्ण है। यदि सब नेता सब काम छोडकर केवल इसी विषय पर लगे रहे, तो बस है। यदि हम लोग भाषा के प्रश्न को गौण समझे, या उधर से मन हटा लेगे, तो इस समय लोगो मे जो प्रवृत्ति चल रही है, लोगो के हृदयो मे जो भाव उत्पन्न हो रहा है, वह निष्फल हो जायेगा। भाषा माता के समान है। माता पर जो प्रेम होना चाहिए, वह हम लोगो मे नही है। —हम अग्रेजी के मोह मे फसे है। हमारी प्रजा अज्ञान मे डूबी है। हमे ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष मे राजकीय सभाओं में, काग्रेस मे, प्रान्तीय सभाओ मे और अन्य सभा-समाज और सम्मेलनो मे अग्रेजी का एक भी शब्द सुनाई न पडे। हम अग्रेजी का व्यवहार बिलकुल त्याग दे।"

यह हमारे राष्ट्रपिता ने सन् १९१८ मे कहा था। मै कहना चाहता हूँ कि यदि भारत को सच्चा भारत रहना है, तो वह भारतीय भाषाओ के बिना नही रह सकता। यह प्रश्न हिन्दी का नही है। यह बहुत गलत कहा जाता है कि हिन्दी वाले यह चाहते है और हिन्दी वाले वह चाहते है। यह प्रश्न भारतीय भाषाओं का है। एक ओर हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाएँ है, और दूसरी ओर अग्रेजी है। अग्रेजी केवल भाषा के रूप मे यहा नही है। अग्रेजी के साथ सारी अग्रेजियत बधी हुई है। उसके साथ अग्रेजी सस्कार बधे हुए हैं, अग्रेजी सस्कृति बधी हुई है और अग्रेजी सभ्यता बधी हुई है। भारतीय भाषाओ के साथ भारतीयता है; इसलिये यदि हमे इस देश को सच्चा भारत बनाना है, तो मै कहूगा कि ऐसा हम अग्रेजी द्वारा किसी प्रकार भी नही कर सकते। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओ में कोई सघर्ष नही है। मेरी समझ मे नही आता, जब हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाओं के संघर्ष की बात कही जाती है। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओ की एक ही संस्कृति है। वे सब एक ही सस्कृति से निकली है। शब्द-भडार भी उन सब का एक है। उत्तर की भाषाएँ तो सस्कृत से निकली है, दक्षिण की भाषाओ मे प्रचुर परिमाण में सस्कृत की शब्दावली है।

एक माननीय सदस्य—वर्णमाला भी एक है।

डा० गोविन्ददास—फिर एक भाषा बढती है, तो सारी अन्य भाषाएँ भी बढती है। मै आपको एक दृष्टात दूँगा। केन्द्रीय सरकार इस समय शब्दावली बना रही है। उस शब्दावली को कुछ थोडे हेर-फेर के साथ सब राज्यो ने स्वीकार कर लिया है। तो इस प्रकार, जब एक भाषा बढ़ती है, तब अन्य भाषाएँ भी बढ़ती है।

फिर भाषा प्रयोगशाला मे नही बढती। भाषा बढती है तब, जब वह व्यवहार के क्षेत्र मे आती है। प्रयोगशालाओ मे कभी दुनिया मे भाषा नही बढी। मै इतिहास का एक छोटा-सा विद्यार्थी रहा हूँ। मैने भाषाओं का इतिहास पढा है, और क्योंकि यह मेरा विषय रहा है, मै आपसे कहना चाहता हू कि कोई भाषा प्रयोगशाला मे नही बढी, भाषा बढी है व्यवहार मे। फिर प्रान्तीय भाषाओ की बढती भी केन्द्र मे हिन्दी की बढती से होगी। अगर केन्द्र मे अंग्रेजी मे सब कुछ चला, तो अन्य भारतीय भाषाएँ नही बढ सकती। प्रातीय भाषाओ का भी विकास नही हो सकता। फिर तो सारे प्रात अग्रेजी की ओर देखेगे। इस सम्बन्ध मे भी राष्ट्रपिता का ही एक कथन सुनिए—

"अग्रेजी को प्रांतीय भाषाओ का या हिन्दी का स्थान नही देना चाहिए। अगर अंग्रेजी ने यहाँ लोगो की भाषाओं को निकाल न दिया होता, तो प्रान्तीय भाषाए आज आश्चर्यजनक रूप मे समृद्ध होती। अगर इग्लैड फ्रेंच भाषा को अपने राष्ट्रीय काम-काज की भाषा मान लेता, तो आज हमें अग्रेजी का साहित्य इतना समृद्ध न मिलता। नार्मन विजय के बाद वहा फ्रेंच भाषा का ही जोर था, लेकिन उसके बाद लोक-प्रवाह विशुद्ध अग्रेजी के पक्ष मे हो गया। अग्रेजी साहित्य को आज हम जिस महान् रूप मे देखते है, वह उसी का फल है।"

सविधान-सभा मे जब भाषा विषयक विवाद चल रहा था, उस समय एक प्रश्न उठा कि आठवे शिड्यूल मे हम अग्रेजी को भी स्थान दें। उस समय जो कुछ हमारे प्रधानमत्री ने कहा था, उस को भी आप सुन लीजिए। हमारे प्रधान मत्रीजी ने स्पष्ट रूप में कहा था—

"There is an insidious move on the part of some to include English as one of the languages of the Eighth Schedule. This is obviously a wrong thing to do, as English is not an Indian language, though it is acquired and owned as mother tongue by some Indians like the Anglo-Indian community. It should be enough if we recognise the need of learning English, or a modern European language. It would be absurd, therefore, and unwarranted too, to include English as an Indian language in the Schedule. In this move to include English is to by-pass the basic principles of the replacement of English by India's national language. It will be wholly in contravention of the

spirit and contents of the Constitution and the modern history of our people during the last half a century."

यह हमारे प्रधान मत्रीजी का कथन है और किसी का कथन नही है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात हमारे लिए स्वतंत्रता है, लेकिन स्वतत्रता की हम रक्षा कब कर सकते हैं? स्वतत्रता की रक्षा अग्रेजी के दौर-दौरे से होनेवाली नही है। स्वतत्रता की रक्षा तब होगी, जब उस स्वतत्रता को, उस स्वराज्य को यहां के लोग अपनी स्वतत्रता और अपना स्वराज्य मानेगे। इस सम्बन्ध मे भी आप राष्ट्रपिता का कथन सुनिए। उन्होंने कहा था—

"अगर स्वराज्य अग्रेजी बोलने वाले भारतीयो का और उन्ही के लिए होने वाला हो, तो निस्सन्देह अग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी ; लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भखे मरने वालों, करोडों निरक्षरो, निरक्षर बहनो और दलित व अन्त्यजो का हो और इन सब के लिए होने वाला हो, तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।"

स्वतत्रता के साथ चार प्रमुख बाते आती है, जो हमे देखनी है। पहली बात है भारतीय एकता, दूसरी बात है भारत मे समाजवादी समाज की रचना, तीसरी बात है भारत मे प्रजातत्र की सफलता और चौथी बात है भारत की आर्थिक उन्नति। हम एक-एक बात को ले ले। क्या भारतीय एकता अग्रेजी से रह सकती है? बार-बार यह कहा जाता है कि यह विधेयक इसलिए लाया जा रहा है कि भारत की एकता बनी रहे। यह कैसी एकता है? आप देखे कि अंग्रेजी के द्वारा कैसे एकता रहेगी? अग्रेजी भाषा ने यहां के पढ़े-लिखे लोगो मे और यहां की जनता के बीच एक बहुत वड़ी खाई खोद दी है। एक बड़ी दीवार खडी कर दी है। जब तक हम उस खाई को पाट नही देंगे और जब तक हम उस दीवार को ढहा नही देंगे, तब तक भारतीय एकता नही कायम रह सकती। आज क्या हाल है, आप देखे कि जितना काम हो रहा है, जितना भारत की एकता का प्रयत्न हो रहा है, वह सब-का-सब एक छोटे-से तबके की ओर से, एक छोटे-से तबके द्वारा हो रहा है, जो कि अग्रेजी भाषा का प्रेमी है। इसमें बहुत कम हिस्सा यहा की आम जनता का है। देश को एकता के सूत्र मे बाधने के लिए कोई भी विदेशी भाषा काम नही दे सकती ; इसीलिए हमने सविधान में हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किया था ; क्योकि वह यहां के ४२ प्रतिशत लोगो की मातृभाषा है, और देश के कुछ छोटे-छोटे क्षेत्रो को छोड़ कर बाकी समूचे देश मे समझी जाती है।

इस सम्बन्ध मे महात्मा गाधी का भी एक कथन सुनिए—

"यह बात नही कि मै भाषा के पीछे दीवाना हो गया हूँ।....फिर भी मैं

भाषा पर इतना जोर इसलिए देता हू कि राष्ट्रीय एकता हासिल करने का यह एक बहुत जबरदस्त साधन है। और जितना दृढ इसका आधार होगा, उतनी ही प्रशस्त हमारी एकता होगी।"

आज यह खेद का विषय है कि गाधीजी की इन बातों को हम भूल गये है। अब जब एकता नही लाई जा सकती, तब फिर समाजवाद इससे कैसे लाया जा सकता है ? जब अग्रेजी भाषा को लोग समझते नही है, तब समाजवाद की स्थापना अग्रेजी के द्वारा कैसे होगी, यह समझ मे नही आता है। फिर जो प्रजातत्र के चलने की बात है, वह तो अग्रेजी द्वारा चलना सभव ही नही है, क्योकि इस देश के ९८ फी सदी लोग अग्रेजी नही जानते। अगर हमको प्रजातत्र चलाना है, अगर हमारे यहा बालिग मताधिकार है, तो उस भाषा मे प्रजातत्र चल सकता है, जो कि इस देश की भाषा हो, या इस देश की मातृभाषाएं हो। अग्रेजी के द्वारा इस देश में प्रजातत्र नही चल सकता। इसीलिए आप देखते है कि हमारी केन्द्रीय सरकार के कामों मे, हमारी पचवर्षीय योजनाओ में, और हमारी अन्य दूसरी बातों मे, यहाँ की जनता को कोई दिलचस्पी नही है।

फिर चौथी बात रही, आर्थिक उन्नति की। यह आर्थिक उन्नति, बिना विज्ञान की उन्नति के नही हो सकती। और विज्ञान की उन्नति के लिए हमे वैज्ञानिक चाहिए। अभी शिक्षा-मत्रालय के अनुदानों पर बोलते हुए मैंने निवेदन किया था कि हमारे एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० कोठारी इस सम्बन्ध में क्या कहते है। डा० कोठारी ने जो कहा था, इस अवसर पर मै उसको उद्धृत नही करना चाहता; क्योकि थोड़े ही दिन पहले मैं उसको कर चुका हू। हमारे वैज्ञानिक तीव्र गति से तभी तैयार हो सकते है, जब उन्हें वैज्ञानिक शिक्षा हिन्दी और हमारी अन्य भारतीय ाषाओं के द्वारा मिले।

इस सम्बन्ध में भी महात्मा गांधी का मत है—

"यह कभी नही हो सकता कि हजारों लोग अग्रेजी भाषा को अपना माध्यम बनाये, और यह अगर मुमकिन हो, तो भी चाहने लायक तो कतई नही। इसकी सीधीसादी वजह यह है कि अग्रेजी के जरिए मिलने वाला उच्च और पारिभाषिक ज्ञान, आम लोगों तक नही पहुच सकता। यह तो तभी हो सकता है कि जब इस ज्ञान का प्रसार, ऊपर के दरजेवालों में भी किसी देशी भाषा के द्वारा हो।"

जब संविधान में हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किया गया और हिन्दी के साथ शेष तेरह भाषाओ को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया, तब हिन्दी के प्रति और हमारी अन्य भारतीय भाषाओ के प्रति लोगों के मन मे कितने उत्साह और जागृति

की लहर उठी थी। लोग हिन्दी और भारतीय भाषाओं की ओर झुके थे ; लेकिन जब से यह चर्चा चलने लगी कि फिर से अंग्रेजी यहा हमेशा के लिए चलने वाली है, तब से यह जोश, जो हमारी जनता मे हिन्दी के राज-भाषा और सारी भारतीय भाषाओं के राष्ट्रभाषा होने पर हुआ था, वह ठडा होकर खत्म हो रहा है। फिर से लोग अंग्रेजी की ओर मुड़ रहे हैं। यह स्वाभाविक भी है। लोग अपने बच्चों को अंग्रेजी इसलिए पढाते है कि इस गरीब देश मे सरकारी नौकरियां अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगो को ही मिलती है। छोटी-से-छोटी नौकरी भी बिना अंग्रेजी के ज्ञान के नही मिल सकती, तब अगर लोग अंग्रेजी के द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की कोशिश करते है, तो इसमें लोगों का दोष नही है ; बल्कि यह हमारा दोष है।

यह कहना गलत है कि अकेले अहिन्दी भाषा-भाषी लोग हिन्दी का विरोध कर रहे है। हिन्दी के प्रचलन का, हिन्दी को केन्द्र मे चलाये जाने का विरोध केवल अहिन्दी भाषा-भाषी लोग ही नही ; वरन् हिन्दी भाषा-भाषी भी कर रहे है। और यह विरोध कौन लोग कर रहे है। यह विरोधी वही दो प्रतिशत लोग कर रहे है, जिनके हाथ मे सारी राजसत्ता है, जिनके हाथ में देश का सारा काम-काज है, जो आज भी अपना आधिपत्य इस अंग्रेजी के द्वारा इस देश मे बनाये रखना चाहते है। वे हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का प्रचलन नहीं होने देना चाहते ; क्योकि उनका स्वार्थ अंग्रेजी से सधता है ; इसलिए यह कहना कि केवल अहिन्दी भाषा-भाषी विरोध कर रहे है, यह बात सही नही है। अहिन्दी भाषा-भाषी भी कर रहे है और हिन्दी भाषा-भाषी भी कर रहे हैं। वे लोग इसका विरोध कर रहे हैं, जिनका स्वार्थ अंग्रेजी से सधता है। फिर यह बात भी गलत है कि सारे हिन्दी भाषा-भाषी प्रात हिन्दी के विरोधी हैं। दक्षिण में मद्रास को छोड कर केरल, मैसूर और आन्ध्र हिन्दी के विरुद्ध नही है। पूर्व मे बगाल को छोड कर असम और उड़ीसा हिन्दी के विरुद्ध नही है। पश्चिम में गुजरात और महाराष्ट्र हिन्दी के विरुद्ध नही है। केवल बगाल और तमिलनाड तक ही यह विरोध केन्द्रित है। पहले मैं बगाल को लेता हूँ। यह आवाज़ पहले-पहल बगाल से उठी थी कि भारतवर्ष मे एक भाषा की ज़रूरत है और वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है। केवल बंगला भाषा के ही नही ; वरन् हमारे भारत के एक महान् साहित्यकार श्री बकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने हिन्दी के विषय मे अपने एक भाषण में कहा था—

"अंग्रेजी के विषय मे लोगो की जो कुछ भावना हो, पर मैं यह दावे के साथ कह सकता हू कि हिन्दी के बिना हमारा कार्य नही चल सकता। हिन्दी की पुस्तकें

लिख कर और हिन्दी बोल कर भारत के अधिकाश भाग को निश्चय ही लाभ हो सकता है। यदि हम देश मे बगला और अग्रेजी जानने वालो की सख्या का पता चलाये, तो साफ प्रकट हो जायगा कि वह कितनी न्यून है। जो सज्जन हिन्दी भाषा द्वारा भारत मे एकता पैदा करना चाहते है, वे निश्चय ही भारतबन्धु है। हम सब को सगठित होकर इस ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए।

न्यायमूर्ति श्री शारदाचरण मित्र तो देवनागरी लिपि के इतने प्रेमी थे कि उन्होने "देवनागर" नामक मासिक-पत्र निकाला, जिसमे समस्त भारतीय भाषाओं का साहित्य देवनागरी लिपि मे छपता था। सारे भारत की भाषाओं का साहित्य देवनागरी लिपि मे निकालने का प्रयत्न किया था। अब फिर से वह त्रैमासिक पत्र ससदीय हिन्दी-परिषद् द्वारा निकला है। उन्होने उस समय हिन्दी भाषा के सम्बन्ध मे कहा था—

"हिन्दी समस्त आर्यावर्त की भाषा है। कलकत्ते की "एक लिपि विस्तार-परिषद्" समस्त भारतवर्ष मे एक नागरी लिपि का प्रचार करने मे तन मन से लगी हुई है। यद्यपि मै बगाली हूँ, तथापि मेरे दफ्तर की भाषा हिन्दी है। इस वृद्धावस्था मे मेरे लिए वह गौरव का दिन होगा, जिस दिन मै हिन्दी स्वच्छन्दता के साथ बोलने लगूँगा और प्लेटफार्म के ऊपर खडा होकर हिन्दी मे वक्तृता दूगा। उसी दिन मेरा जीवन सफल होगा। जिस दिन मै सारे भारतवासियो के साथ-साथ हिन्दी मे वार्तालाप करूँगा।"

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने इस बारे मे क्या कहा था उसे भी सुन लीजिए—

"सबसे पहले मैं एक गलत-फहमी दूर कर देना चाहता हू, कितने ही सज्जनों का खयाल है कि बगाली लोग या तो हिन्दी के विरोधी होते है, या उस के प्रति उपेक्षा करते है। यह बात भ्रमपूर्ण है और इसका खडन करना मै अपना कर्तव्य समझता हू। मै व्यर्थ अभिमान नही करना चाहता ; पर इतना तो अवश्य कहूँगा कि हिन्दी साहित्य के लिये जितना कार्य बगालियों ने किया है, उतना हिन्दी भाषी प्रात को छोड कर और किसी प्रात के निवासियों ने शायद ही किया हो।....मै इस बात को मानता हू कि बगाली लोग अपनी मातृभाषा से अत्यन्त प्रेम करते है और यह कोई अपराध नही है। शायद हम मे से कुछ ऐसे आदमी भी है, जिन्हे इस बात का डर है कि हिन्दी वाले हमारी मातृभाषा बगला को छुड़ा कर उसके स्थान पर हिन्दी रखवाना चाहते है, यह भ्रम भी निराधार है। हिन्दी-प्रचार का उद्देश्य केवल यही है कि जो काम आज अंग्रेजी से लिया जाता है, वह आगे चल कर हिन्दी से लिया जाय।" ....

"प्रातीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने मे जितनी सहायता इस हिन्दी-प्रचार से मिलेगी, उतनी किसी दूसरी चीज से नही मिल सकती। अपनी-अपनी प्र.तीय भाषाओ की भरपूर उन्नति कीजिये, उस मे कोई बाधा नही डालना चाहता और न हम किसी की बाधा को सहन ही कर सकते है , पर सारे प्रातों की सार्वजनिक भाषा का पद हिन्दी को ही मिला है।... यदि हम लोगो ने तन-मन-धन से प्रयत्न न किया, तो वह दिन दूर नही है, जब भारत स्वाधीन होगा और उस की राष्ट्रभाषा होगी हिन्दी।"

यह हमारे नेताजी का कहना था। जैसा मैंने कहा—यह कहा जाता है कि तमिलनाड इसके खिलाफ है। इसके लिए मैं बतलाना चाहता हूँ कि सन् १९५८ में तमिलनाड मे "दि लैंग्वेज कन्वेन्शन" नाम से एक परिषद् हुई थी। उस परिषद् के स्वागताध्यक्ष श्री के० भाष्यम् और उस परिषद् के अध्यक्ष भूतपूर्व विन्ध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री के० सन्तानम् थे, जो कि आजकल हमारी राज्य सभा के सदस्य है। श्री भाष्यम् ने अपने भाषण मे कहा था—

"The danger is pointed out that imposition of Hindi will lead to disruption of the country. Is this correct? On the other hand, if Hindi is progressively introduced in the Union administration and communication between the States is also in Hindi it is possible to express in Hindi mass feeling of the inhabitants of the region to the inhabitants in another region in a much more effective way than English."

और श्री सन्तानम् ने अपने भाषण मे क्या कहा था, वह भी सुनिये—

"Hindi has functioned for the past many decades as the lingua franca of India at the mass level. Even the British Government recognised this fact by making it the lingua franca of the Indian military forces. Under Mahatma Gandhi's leadership, intense propaganda for Hindi has been carried on for the past 40 years and thousands of boys and girls in non-Hindi States have been educated in Hindi to a level similar to the S. S. L. C."

"The Hindi taught in the school will be continually nourished by the Hindi spoken in the bazaar and the Hindi heard in the Cinema, the radio and other places. On the other hand

no English will be heard anywhere except in select gatherings of professors and scholars"

इसके वाद आप शेष अहिन्दी भाषा-भाषी राज्यों के सम्बन्ध मे कुछ बातें सुन लीजिए। कर्नाटक मे अभी थोड़ दिन पहले ही—कर्नाटक दक्षिण मे है—एक आल-कर्नाटक हिन्दी कन्वेन्शन हुआ। जिसके अध्यक्ष थे बंगलोर के भूतपूर्व मेयर, श्री आर० अनन्त रामन्, बी० एस-सी०, एल-एल० बी० और जिस का उद्घाटन किया मैसूर लेजिस्लेटिव कौंसिल के चेयरमैन, श्री जी० बी० हल्लीकेरो, ने। वहां पर जो प्रस्ताव पास हुआ, उसको सुन लीजिए—

"Although Hindi has been the declared official language of the Indian Union, provision has been made for the continued use of English in the form of an official language until 1965. But now there is a move to amend the Constitution so as to retain and raise English to the status of an Associate Official language, it is said, as a result of extraordinary pressure from a section of the Non-Hindi speaking public. The Karnatak Hindi Convention views this with concern. The Convention is of the opinion that to give place in the Constitution an official status to a foreign language is below the self-respect of any nation and a hindrance to the healthy growth of the official language as well as the regional languages.

× × ×

Therefore, this Convention earnestly urges upon the Government to give up their efforts to make English an associate official language for an unspecified period."

इसी प्रकार कटक मे एक सम्मेलन हुआ, जिसके अध्यक्ष थे पद्मश्री श्री आर्त्त-वल्लभ महान्ति, एम० ए०। उस सम्मेलन मे यह प्रस्ताव पास किया गया—

"यह सम्मेलन अग्रेजी भाषा शिक्षा का विरोध न करते हुए भी अग्रेजी भाषा को अनिर्दिष्ट काल के लिए हिन्दी के साथ सहयोगी या अतिरिक्त भाषा के रूप में ग्रहण करने का एकान्त विरोधी है। यदि अग्रेजी को अतिरिक्त भाषा के रूप मे ग्रहण करने का प्रयोजन हो, तो इसे केवल १९६५ से और पाच वर्ष अर्थात् १९७० तक ही रखा जा सकता है।"

इस विषय में स्वामी विचित्रानन्द दास, एडवोकेट ने अपना यह सशोधन

पेश किया था, कि पाच वर्ष के स्थान पर दस वर्ष रखा जाये, किन्तु उपस्थित साहित्यिको मे से किसी ने भी उनका समर्थन नही किया।

हाल ही मे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का एक अधिवेशन हुआ, जिसके सभापति श्री अनन्तशयनम् आयगर थे, जो आध्र के रहने वाले है, तेलुगु-भाषा-भाषी है। वह बहुत दिनो तक हमारे स्पीकर थे। उन्होने अपने अभिभाषण मे कहा—

"हिन्दी भाषा की समृद्धि से अप्रत्यक्ष रूप मे उत्तर भारत की सभी अन्य भगिनी-भाषाओ की समृद्धि होगी और दक्षिणी भाषाओ की भी इससे समृद्धि होगी, क्योंकि उन के काम-काज की भाषा हिन्दी ही होगी।" आगे चल कर उन्होने कहा—

> "हिन्दी के प्रति भारत के किसी कोने मे वास्तविक घृणा नही है और सामान्य रूप से सभी मानते है कि इस का प्रसार अवश्य होना चाहिए एव यह पूर्ण रूप से राष्ट्र के काम-काज की भाषा बने। ऊपर से जो विरोध कुछ ओर से देखने मे आता है, उस का कारण यह है कि हिन्दी-साहित्य को अधिकाधिक समृद्ध करने के पूर्व अग्रेजी से हिन्दी पर उतर आने का हठ अथवा खीचा-तानी हो रही है।"

अभी दक्षिण के एक विद्वान् और मैसूर विश्वविद्यालय के अवकाश-प्राप्त प्रोफसर श्री चन्द्रहासन दिल्ली पधारे थे। उन्होने एक वक्तव्य मे कहा—

> "अगर अग्रेजी को जबरदस्ती लादा जा सकता है, तो क्या कारण है कि हिन्दी को नही लादा जा सकता, जब कि बात ऐसी नहीं है। हिन्दी तो भारत की भाषा है, भारत की अधिक जनसख्या द्वारा समझी और बोली जानेवाली भाषा है। सविधान मे जब १९६५ के बाद हिन्दी का राजभाषा के रूप में प्रयोग करने की व्यवस्था कर दी गई, तो अब ऐसा क्यो किया जा रहा है कि हिन्दी को राजभाषा नही बनने दिया जायगा।. . . .द्रविड़ मुन्नेत्र कड़घम हिन्दी का विरोध करता है; पर वह तो भारत की अखडता का भी विरोधी है। वह तो अलग द्रविड़स्तान चाहता है। उसे देश की एकता मे विश्वास नही है।"

गाडगिल साहब महाराष्ट्रीय है, हिन्दी भाषा-भाषी नही है। वे बहुत समय तक इस सदन के सदस्य थे और पजाब के राज्यपाल भी रहे है। उन्होंने अपने एक भाषण मे कहा है—

> "हिन्दी एक सघटित करने वाली शक्ति है। जन-साधारण को एक विशाल जीवन की तरफ ले जाने का मार्ग है।. . . .वह अब किसी एक प्रदेश

की न होने की वजह से सारे देश की होगी और सारे देश का बौद्धिक और व्यवहारी जीवन समृद्ध करेगी। हिन्दी का प्रचार-कार्य एक वाङयज्ञ है।"

उपाध्यक्ष महोदय—अब माननीय सदस्य अपना भाषण समाप्त करने का प्रयत्न करे।

डा० गोविन्ददास—उपाध्यक्ष महोदय, मेरा जो दृष्टिकोण है, उस को कोई आपके सामने नही रखेगा और कम-से-कम काग्रेस वाले तो नही रखेंगे , इसलिए मुझे अपनी वात कहने के लिए कुछ समय और दिया जाये।

गुजरात विद्यापीठ के उपकुलपति, श्री देसाई ने अपने एक लेख में कहा है—

"दुख तो यह है कि यह भी कहा जाता है कि हिन्दी तैयार नही है, या पूरी तरह विकसित नही है। स्वभाषा का ऐसा अपमान करते हुए शर्म आनी चाहिए और कभी कोई भाषा बिना उस का उपयोग किये कही विकसित हुई देखी है? इसलिए सरकार को प्रामाणिकता से हिन्दी के उपयोग के लिए पूरा मौका देना चाहिए। अभी तक कानून से ऐसा नही किया गया है। इस बाधा को दूर करने की जरूरत है। इसके बजाय हिन्दी कभी आ ही न सके, ऐसा कानूनी कदम उठाया जा रहा है।"

वे आगे कहते है—

"ऊपर की विचारणा से उल्टा यह दिखाई देता है कि अग्रेजी को सह-भाषा के रूप मे ग्रहण करना। यह किसी तरह का उपाय ही नहीं है। इससे तो भाषाकीय अधेर और कारबार मे अराजकता ही पैदा होगी, क्योकि अग्रेजी भाषा वैसे भी देश की जनसख्या के एक प्रतिशत तक पहुची है और वह भी उसे ठीक तरह से नही आती। और प्रजा गति देखते हुए इसके बारे मे हर साल शिथिलता ही बढेगी। उसके चिह्न सर्वत्र नजर आते है। इस वजह से शिक्षा और राज-व्यवस्था दोनों मे सुधार नही हो रहा है। प्रजा चीखती रहती है, मगर कोई सुनता ही नही। स्वराज्य की नौकरशाही, अग्रेजीशाही बन चकी है। यह भी निभ नही सकेगी, क्योकि माध्यम के रूप मे उपयोग करने के लिए अग्रेजी ही उसे (नौकरशाही को) कम आती जायगी।"

मेरे पास और भी बहुत से उद्धरण है, लेकिन चू कि आप कहते है कि वक्त नही है, इसलिए मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि बम्बई, पूना आदि के अनेक लोगों ने हिन्दी को शीघ्र ही केन्द्र की राजभाषा के स्थान पर प्रस्थापित करने का अनुरोध किया है। उनमे से कुछ नाम ये है—श्री विमलशकर ना० शास्त्री, श्री कान्तिलाल एम० जानी, श्री रतिलाल र० जोशी, श्री मधुसूदन एम० देसाई, श्री कोकिला र० पटेल, श्री नन्दकिशोर ओझा, श्री इन्दिरा र० पारेख, श्री विपिन-

चन्द्र वादवे, श्री किशोरीलाल वशिष्ठ आदि। ऐसे कितने ही लोग है, जिन्होने यह कहा है कि अग्रेजी सहभाषा के रूप मे हमेशा के लिए, अनिश्चित काल के लिए मुकर्रर न की जाये।

मै इन उद्धरणो को पढना समाप्त करता हूँ—अन्त में केवल अग्रेजी के दो उद्धरण पढकर सुनाऊँगा। आयरलैंड के विख्यात कवि, थामस डेविस कहते है—

"A nation without a mother-tongue cannot be called a nation. The defence of one's mother tongue is more essential than the defence of the boundaries of one's motherland, because the mother tongue is a more powerful barrier against the intrusion of foreigners than even the natural barriers of rivers and mountains".

यह कहा जाता है कि हमारी भाषाएँ सक्षम नही हैं; लेकिन अग्रेजी के एक प्रमुख विद्वान् श्री क्रस्ट कहते है—

"Indian vernaculars are magnificient vehicles of speech and capable of expressing any human conception and being the vehicle of the highest scientific education."

अन्त मे मै आप से यह कहूँगा कि मेरी समझ मे नही आता कि इस सकट-कालीन परिस्थिति मे इस विधेयक को क्यो लाया जा रहा है। अभी १९६५ तक बराबर अग्रेजी चल सकती थी; इसलिए मैं इसका इस वक्त लाया जाना किसी प्रकार भी उचित नही समझता। मैं यह नही कहता कि सरकार ने हिन्दी के लिए कोई काम नही किया है। उस ने कुछ काम किया है, लेकिन यदि गत बारह वर्षो के एक युग मे उसने सविधान की भावना के अनुसार उचित काम किया होता, तो आज इस विधेयक की आवश्यकता न होती। देश के प्रचड बहुमत के विरोध मे सरकार यह विधेयक ला रही है। इस देश के ९८ फीसदी लोग अग्रेज़ी नहीं जानते और दो फीसदी अग्रेज़ी जानने वालों के लिए ९८ फ़ीसदी लोगों के ऊपर अग्रेज़ी लादी जा रही है।

जैसा कि मैंने अभी कहा है, इससे स्वतंत्रता की रक्षा नही हो सकेगी, इससे एकता की स्थापना नही हो सकेगी, इससे समाजवाद की रचना नही होगी, इससे हमारी आर्थिक उन्नति नही होगी, इससे इस प्रकार के कोई भी काम हो जायें यह सम्भव नही है। और प्रजातंत्र तो इसके द्वारा चल ही नही सकता है। विधेयक के द्वारा अनिश्चित काल के लिए अग्रेजी लादी जा रही है। मुझे भय है कि गत बारह वर्षो मे हिन्दी को चलाने के लिए जिस प्रकार कोई योग्य कार्य नही

हुआ, यदि यह विधेयक इसी तरह से स्वीकृत हुआ, इसमे कोई समय न रखा गया—दस वर्ष, पाच वर्ष या कोई भी अवधि निर्धारित न की गई—तो उसी प्रकार इस विधेयक के स्वीकृत होने के बाद भी कोई व्यावहारिक कार्य नही हो सकेगा। जो कुछ पिछले बारह वर्षो मे हुआ है, वही भविष्य मे होने वाला है और पद्रह बीस वर्षो के बाद हमारे सामने वही परिस्थिति आयेगी, जो कि आज हमारे सामने है।

हिन्दी को चलाने के विषय मे सरकार ने कभी कोई आयोजना नही बनाई। जो आयोग मुकर्रर हुआ, वह भी कोई आयोजना नही बना सका और इसी प्रकार ससद् की कमेटी भी कोई आयोजना नही बना सकी। हमारी पचवर्षीय योजनाओ में भी हिन्दी चलाने की कोई आयोजना नही बनी। बिना कोई आयोजना बनाये इस प्रकार के विधेयक को मैं स्वीकार नही कर सकता। मै तो यह मानता हूँ कि आज भी सारा काम-काज हिन्दी मे चल सकता है। मै यह भी मानता हूँ कि हम ने गलती की कि जिस दिन से सविधान लागू किया, उसी दिन से सब काम हिन्दी मे नही चलाया। आयरलैड मे उस के स्वतत्र होने के बाद, दूसरे दिन से ही गैलिक मे जब काम चल सकता है, इज्राईल मे उसके स्वतत्र होने के बाद सब काम हिब्रू मे चल सकता है, जो कि दोनों मृत भाषाएँ थी, तो हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाएँ जो कि मत भाषाएँ नही है, इनके द्वारा उस दिन से सारा काम चल सकता था और आज भी मै समझता हूँ कि चल सकता है।

जैसा मैंने आरम्भ में निवेदन किया है, मुझे दु:ख है कि जिनके नेतृत्व मे—पडितजी के—मैने आज तक अपना सारा जीवन व्यतीत किया है, शास्त्रीजी मेरे साथी रहे है, उन के द्वारा लाये गये विधेयक का मुझे विरोध करना पड रहा है। तीन बार उन के मत से मुझे अपना विरोध करना पड़ा है। एक बार उस वक्त, जब कि सविधान सभा मे अकों का प्रश्न आया था ; दूसरी बार उस वक्त, जब कि गो-वध-बन्दी सम्बन्धी मेरे विधेयक का सरकार ने विरोध किया था और तीसरी बार यह है। लेकिन, यह मेरी अंतरात्मा का प्रश्न है। यह वह प्रश्न है, जिस को सुलझाते-सुलझाते और जिसके लिए काम करते-करते पचास वर्ष का अपना सारा जीवन मैने व्यतीत किया है और जिस प्रश्न को स्वराज्य के बाद मै सब से महत्त्वपूर्ण प्रश्न समझता हूँ ; इसलिए अपनी अतरात्मा के अनुसार काम करने के लिए, इस जीवन के संध्याकाल में, मैं बाध्य हूँ। मेरी निगाहों में पडितजी इतने उदार है, शास्त्रीजी इतने उदार हैं कि वे मुझे गलत नही समझेगे और मेरा जो इस सम्बन्ध में मत है, उस का आदर करेंगे।

मुझे बड़े दु:ख के साथ इस विधेयक का विरोध करना पड़ रहा है।

राज्य-भाषा विधेयक के अंतिम वाचन पर

२७ अप्रैल, १९६३

डा० गोविन्ददास—अध्यक्षजी, श्री एन्थनी साहब ने इस विधेयक का विरोध किया अपनी दृष्टि से, मैं इसका विरोध करता हूँ अपनी दृष्टि से। यह आश्चर्य की बात है। अंग्रेजी मे एक कहावत है।—

"Two extremes meet."

यह कभी-कभी सत्य हो जाता है।

जब मैं इसका विरोध करता हूँ, उस समय मुझे अत्यधिक दु:ख होता है। मैंने उस दिन भी कहा था, और आज फिर कहता हूँ कि जिन पडित जवाहरलाल जी नेहरू के नेतृत्व मे मैंने सारी जिन्दगी काम किया, जिन श्री लालवहादुरजी शास्त्री के साथ मैं वर्षों काम करता रहा, उन के मतो के विरुद्ध आज मुझे कुछ कहना पड रहा है। मैने उस दिन भी कहा था और आज भी कहता हूँ कि यह मेरी अन्तरात्मा और मेरी कान्शेन्स का सवाल है। इस के पहले दो बार ऐसे मौके आये थे—एक तब, जब सविधान सभा मे अकों का प्रश्न आया , और दूसरा तब, जब गोवध-बंदी सम्बन्धी मेरा विधेयक यहां पर आया।

अभी श्री रंगा साहब ने कुछ कहा। मैं उन्हे याद दिलाता हूँ कि सविधान सभा के अवसर पर वह पहले व्यक्ति थे, जिनके पास मै गया था और उन्होंने सब से पहले इस बात पर हस्ताक्षर किये थे कि इस देश की राजभाषा देवनागरी लिपि मे लिखी हुई हिन्दी होगी। आज उनकी एक बात सुन कर मुझे आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि जब यहां पर अग्रेजी राज्य था, उस समय अग्रेजी विदेशी भाषा थी, लेकिन आज वह विदेशी भाषा नही रही। अजीब तर्क है। मेरी समझ मे नही आया कि अग्रेजो के रहते यदि वह विदेशी भाषा थी, तो आज वह स्वदेशी भाषा कैसे हो गई? अजीब बात है!

जहा तक द्रविड़ मनेत्र कड़घम के सदस्यों का सम्बन्ध है और जहा तक एन्थनी साहब का सम्बन्ध है, एक भारत का विभाजन चाहते है और दूसरे आज भी भारत में रहते हुए इगलिस्तान की ओर देखते है। तो ऐसे लोगो से मुझे कुछ नही कहना है; लेकिन जो हृदय मे राष्ट्रीय विचार रखते है, उनसे मैं आज फिर इस बात को दोहराना चाहता हूँ कि जब तक अग्रेजी का चलन इस देश मे रहेगा, तब तक भारत

सच्चा भारत नही हो सकता, तब तक यहां की जनता स्वतत्रता और स्वराज्य के अर्थ को नही समझ सकती, तब तक इस देश मे सच्ची एकता नही हो सकती, क्योकि जो दो फीसदी लोग अग्रेजी जानते है और जो ९८ फीसदी लोग अग्रेजी नही जानते, उनके बीच एक खाई खुदी हुई है, एक दीवार खडी हुई है। जब तक वह खाई न पट जायगी, जब तक वह दीवार न ढह जायगी, तब तक इस देश मे सच्ची एकता नही हो सकती।

जो विधेयक इस देश मे एकता लाने का प्रयत्न करने के लिए लाया गया है, मेरा नम्र निवेदन है—इसमे मतभेद हो सकता है—वह एकता को भग करने के लिए सब से बडा साधन है। इससे न जनता स्वराज्य का अर्थ समझ सकती है, न इस से देश मे एकता हो सकती है, न इससे आर्थिक उन्नति हो सकती है, क्योकि तीव्र गति से वैज्ञानिक तैयार नही हो सकते। न उससे प्रजातत्र चल सकता है, इसलिए बड़े भारी हृदय से, बडे दु.ख के साथ, हृदय के ऊपर, अपनी छाती पर पत्थर रखकर मुझे इस विधेयक का विरोध करना पड रहा है।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् नवम् वार्षिकोत्सव पटना

अध्यक्षीय भाषण

२८ मार्च, १९६०

देवियो और सज्जनो,

सर्वप्रथम मेरा यह कर्त्तव्य है कि प्राचीन और वर्तमान विहार की पुण्यभूमि को नमन करूँ, जिस भूमि पर महाराजा विदेह, जगज्जननी महारानी सीता, तीर्थंकर महावीर स्वामी, भगवान् बुद्ध, सम्राट् चन्द्रगुप्त और सम्राट् अशोक ने जन्म लिया।

आपने इस अधिवेशन का सभापति बनाकर मेरा जो सम्मान किया है, उसके प्रति आपका हृदय से आभारी हूँ। मेरा विचार है कि आपने मुझे यह सम्मान केवल इस कारण प्रदान नही किया है कि मैं हिन्दी-साहित्य की कुछ सेवा कर सका हूँ, वरन् इसलिए भी दिया है कि मेरा सतत प्रयास रहा है कि हिन्दी को अपना उचित स्थान राजकाज और प्रशासन-क्षेत्र मे भी मिले। आज हम जिन परिस्थितियो मे यहाँ समवेत हुए हैं, उनमें इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि हम सब मिल कर हिन्दी को अपना उचित स्थान दिलाने के लिये और भी अधिक प्रयास करे।

अपने ही राज्य में अपनी भाषा की याचना एक विडम्बना

यह बात लगती तो कुछ अजीब-सी है कि हमे अपने देश में इस बात का प्रयास करना पडे कि देशवासियो की भाषा राज्यभाषा भी हो। यदि देश पर विदेशी राज्य होता, तो ऐसे प्रयास करने की आवश्यकता सम्भवत समझ मे आ सकती थी; किन्तु इतिहास की यह कैसी बिडम्बना है कि जो देश विदेशियों के चगुल से लगभग बारह वर्ष पूर्व मुक्त हुआ था, उस देश में भी हम को इस बात के लिए परिश्रम और प्रयास करना पडे कि जनता की भाषा राज्यभाषा हो। जिस जाति की भाषा पूर्णत. अविकसित हो, जिस की अपनी सस्कृति और सभ्यता न हो, जिसकी अपनी ऐतिहासिक परम्पराएँ और गौरवगाथा न हो, और जो बर्बरता की स्थिति से या तो निकली ही न हो, या कुछ समय पूर्व ही निकली हो, उस जाति के लिए सम्भवत अपनी भाषा में अपना राजकाज चलाने के लिए प्रयास करना पडे; किन्तु हमारे देश का इतिहास हमारे देश की सस्कृति, हमारे देश की सभ्यता ससार के किसी भी देश से यदि अधिक

पुरानी नही तो कम पुरानी नही है। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र न था और न हो सकता था, जिसमे हमारी जाति ने उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त न की हो और अमूल्य विचार मानव-जगत् के सामने न रखे हो। क्या दर्शन, क्या विज्ञान, क्या काव्य, सभी क्षेत्रों मे भारत ने ऐसे सूक्ष्म और चमत्कारिक विचार रखे कि आज भी सारे सभ्य जगत् पर उनकी छाप है और सारा सभ्य जगत् उसका ऋणी। ये सब सत्य हमारे पूर्वजो ने इस देश की भाषा या भाषाओ द्वारा ही व्यकत किये थे। समझता हूँ कि इन क्षेत्रो मे उन्होंने अपनी भाषा द्वारा इतने सूक्ष्म और गूढ विचार व्यक्त किये कि आज भी उनके पूर्ण रहस्य को समझने के लिए विद्वानों को परिश्रम करना पडता है। अपनी बात को मँजे हुए और बहुत ही थोडे शब्दो मे व्यक्त करने की परिपाटी हमारे यहाँ इतनी घर कर गई कि मात्रा के लाघव को भी विद्वान् पुत्रलाभ के समान मानते थे। आज सक्षेपाक्षरो की जो प्रणाली प्रचलित है, उससे भी अद्भुत् प्रणाली हमारे यहाँ दो सहस्र वर्षो पहले प्रचलित थी और प्रत्याहारों द्वारा पाणिनि ऋषि व्याकरण-जगत् मे वह चमत्कार कर गये, जिसकी पुनरावृत्ति, अनेक शताब्दियों तक प्रयास करने पर भी, कोई देश या जाति नही कर सकी। इस प्रकार हमारे देश के विद्वान् गागर मे सागर भरने मे समर्थ थे और मै यह मानता हूँ कि आज भी है। यह बात न केवल सस्कृत के लिए ठीक है, वरन् हमारी अन्य भाषाओ के लिए भी उतनी ही ठीक है। कबीर ने हिन्दी मे जितने उदात्त ; किन्तु सूक्ष्म दार्शनिक विचार अपनी सूक्तियो मे रक्खे है, वैसे संभवत. उतने थोडे शब्दों मे अन्यत्र कही भी न मिलेंगे। मै यह बात आपके समक्ष मिथ्या अभिमान या अतीत की गौरव-गाथा के लिए नही रख रहा; वरन् मैंने इनकी ओर सकेत केवल इसलिए किया है कि आप इस देश के अन्य वासी इस ऐतिहासिक विडम्बना पर विचार करे कि इतनी समृद्ध भाषाओं वाले देश मे यह प्रयास क्यों करना पडे कि देश की भाषा राजभाषा भी हो ; पर मै इसे अपना दुर्भाग्य कहूँ, जनता का दुर्भाग्य कहूँ या अपनी भावी पीढियों का दुर्भाग्य कहूँ कि आज भी हमारे देश मे कुछ ऐसे व्यक्ति है, जो सभवत. सच्चे मन से या स्वार्थवश इस बात पर अडे हुए है कि इस देश की कोई भाषा राजद्वार मे फटकने न पाये। अत. हम सबके लिए, जिन का जीवन-प्रयास और जीवन-लक्ष्य जनवाणी की सेवा करना रहा है, यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि हम पूरी लगन से इस प्रयास में लग जायें कि हमारे देश की भाषा और देश की भाषाओ का वह अपमान और निरादर अब अधिक दिनो तक न किया जा सके।

हाल ही में स्वतन्त्र हुए देशों में भी अपनी भाषाओं का उपयोग

इस सम्वन्ध मे मैं आप का ध्यान उन कुछ देशो की ओर खीचना चाहता हूँ, जो

अभी चार पाँच साल पहले ही स्वतन्त्र हुए है। आप सब लोग जानते है कि कम्बोज, लव प्रदेश, वियतनाम अभी कुछ वर्ष हुए स्वतन्त्र हुए थे। मेरा विश्वास है कि आप सब इस बात से भी परिचित है कि इन देशो के वासियो का इतिहास कम-से-कम इतना पुराना नही है, जितना कि हमारे देश का है। मै यह भी समझता हूँ कि इन देशों की ससार को सांस्कृतिक देन हमारे देश की अपेक्षा कही कम रही। इन की भाषा और इनकी लिपि भी हमारे देश की भाषा और लिपि की अपेक्षा कम उन्नत थी। किन्तु, इन देशो ने इतने अल्पकाल मे ही अपना सारा राजकाज अपनी भाषाओ मे करना आरम्भ कर दिया है। वहाँ भी फ्रास ने फ्रासीसी भाषा को अपने राज्यकाल मे प्रशासन, विधि और शिक्षा का माध्यम बना रखा था। वहाँ का शिक्षित वर्ग भी फ्रासीसी भाषा का प्रयोग करने मे अभ्यस्त था, किन्तु यह सब होते हुए भी वहाँ के नये शासको ने एक दिन भी यह नही कहा कि फ्रासीसी भाषा को ही प्रशासन, न्याय या शिक्षा का माध्यम बना रक्खा जाय या फ्रासीसी भाषा के द्वारा ही अन्तर्राष्ट्रीय जगत् से सम्बन्ध स्थापित किया जाय या ज्ञान-सरोवर को केवल फ्रासीसी भाषा की खिडकी द्वारा ही देखा जाय। मैं समझता हूँ कि ससार मे एक भी ऐसा व्यक्ति नही है, जो यह कहने की सामर्थ्य या धृष्टता रखता हो कि फ्रासीसी भाषा ज्ञान या किसी अन्य क्षेत्र मे अग्रेजी से किसी प्रकार कम है। सच तो यह है कि आज भी लगभग सारे मध्यपूर्व और योरप के देशो मे फ्रासीसी भाषा राजनय की भाषा है और अग्रेजी का प्रयोग वहाँ बहुत थोडा है और अभी कुछ वर्षो से किन्ही-किन्ही क्षेत्रो मे आरम्भ हुआ है। किन्तु, ऐसी समृद्ध भाषा का भी मोह उन्हे अपनी देशभाषा को अपनी राजभाषा बनाने से एक मुहूर्त के लिए भी न रोक सका। चीन की बात मै कुछ अधिक नही कहना चाहता। अभी हाल मे उस देश का व्यवहार कुछ ऐसा रहा कि जिससे हमारे मन मे कडवाहट पैदा हो गई है; किन्तु इस पर भी हमे यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि हम उसकी प्रगति और उस के प्रगति के कारणो को अपने ध्यान मे रखे, क्योकि यदि हमने ऐसा न किया, तो हम उन का उचित समय पर उचित प्रतिरोध करने मे कभी सफल न होंगे। वे हमारे शत्रु ही सही, किन्तु उनके बलाबल से हमे अपने को पूर्णतया परिचित रखना है और इस दृष्टि से मै आपका ध्यान इस बात की ओर खीचता हूँ कि वहाँ भी एक क्षण के लिए यह प्रश्न किसी के मन मे नही उठा कि वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से वहाँ शिक्षा का माध्यम योरप की ऐसी किसी भाषा को रखना चाहिए, जिसमें विज्ञान का भण्डार है। वहाँ भी सब प्रकार की शिक्षा-दीक्षा चीनी भाषा के द्वारा दी जाती है। उन्हे एक क्षण के लिए भी यह अनुभव नही हुआ कि इस कारण उनके देश मे किसी प्रकार के यंत्रविदों, वास्तुकारो, वैज्ञानिको की कमी रही हो।

बड़े-से-बड़े भारतीयों की आँखों पर अंग्रेजी के मोह की पट्टी

पर, हमारे देश मे ऐसे शिक्षाशास्त्री है, ऐसे प्रशासक है, ऐसे राजनीतिज्ञ है, ऐसे राजनायक है, जो यह माने बैठे है कि भारत की मुक्ति, भारत का भविष्य, भारत की समृद्धि अग्रेजी और केवल अग्रेजी पर ही आधारित है। मै नही जानता कि कभी उन्होने इस बारे मे सोचा भी है या नही कि जब अग्रेज इस देश मे नही आये थे, जब अग्रेजी इस देश में नही आयी थी, तब इस देश के लोगो ने अपनी जीवनधारा कैसे चलायी थी, प्रकृति से कैसे सघर्ष किया था, राजनैतिक तत्र कैसे स्थापित किये थे और भूमि एव अन्तरिक्ष के अनेक सत्यो का कैसे पता चलाया था। क्या वे समझते है कि अग्रेज के पहले हमारे देश के लोग मूक थे, उनकी अपनी वाणी न थी, अपनी प्रतिभा न थी। मै यह नही कहता कि वे लोग राष्ट्रप्रेमी नही है , किन्तु उनका राष्ट्र-प्रेम कैसा है, यह मै समझ नही पाता। उन्हे यह बात भी नही दिखती कि अग्रेजी के बिना हम सभ्यता और सस्कृति के क्षेत्र मे प्रगति न कर पायेगे, यह विचार हमारे सारे इतिहास का उपहास है, हमारी जाति के प्रति सारे विश्व मे यह भावना पैदा करना है कि अग्रेजी के पूर्व हमारा देश पूर्णत असभ्य था, बर्बर था और केवल अग्रेजो ने ही गोरे आदमी का भार वहन करके हमे सभ्य बनाया। मैकाले को मरे हुए लगभग एक शताब्दी हो गयी, किन्तु यदि वे आज जीवित होते, तो उन्हे कितनी प्रसन्नता हुई होती, जब वे यह देखते कि जो बात उन्होने भारतीय सस्कृति, भारतीय साहित्य, भारतीय विज्ञान के सम्बन्ध मे अपनी शिक्षा माध्यम सम्बन्धी टिप्पणी मे १८३३ मे लिखी थी, उसी बात की पुष्टि असाक्षात् रूप मे उनके इन मानस-पुत्रो द्वारा जिनकी चमडी भारतीय है , किन्तु जिन का मन, जिनकी सस्कृति, जिनका दृष्टिकोण मैकाले की भाषा द्वारा, मैकाले के विचारों द्वारा बना है, पुष्ट हो रही है। मैकाले ने अपनी इस टिप्पणी मे लिखा था कि यदि समग्र भारतीय साहित्य और विज्ञान की पुस्तके समुद्र मे डाल दी जायें, तो मानव जाति की कोई हानि न होगी। चाहे अग्रेजी से मोह रखनेवाले भारतीय विज्ञान और साहित्य के प्रति इन्ही शब्दो का प्रयोग न करते हो ; किन्तु, इससे कुछ अन्य उनका तात्पर्य न तो है और न हो सकता है। नही तो वे यह क्यो सोचते या क्यो कहते कि इस देश की भाषा द्वारा हम प्रगति के प्रशस्त पथ पर अग्रसर न हो सकेंगे, हमारे देश की एकता न रह सकेगी, हम प्रजातन्त्र के प्रयोग को सफल न बना सकेंगे, हम अपने आर्थिक तन्त्र को शीघ्रातिशीघ्र समृद्ध न कर सकेंगे, हम जगत् से अपना सम्बन्ध खो बैठेंगे, हम विज्ञान की अमृतदायिनी सरिता से वचित हो जायेगे। स्पष्टत. उनके मन में यह मोह है, यह धारणा है कि इन सब बातो का केवल एक सूत्र, केवल एक द्वार, एक माध्यम अग्रेजी और केवल अग्रेजी है। पर, थोड़ा विचार करके देखिए कि इसमे कितना तथ्य है। क्या यह

बात ठीक है कि केवल अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही किसी जाति के नर-नारी प्रगति कर सकते है ? यदि यह बात ठीक होती, तो सभवत: इंग्लैण्ड मे ऐसा एक भी आदमी न होता, जो ज्ञान-विज्ञान के हर क्षेत्र मे पारगत न होता। यदि अंग्रेजी ही सास्कृतिक और वैज्ञानिक प्रगति का दूसरा नाम है, तो इग्लैण्ड का हर वासी, जिसे अंग्रेजी अपने माँ के दूध के साथ मिलती है, वह किसी प्रकार विज्ञान से अपरिचित न होता, किन्तु, क्या ऐसा है ? इग्लैण्ड ने विज्ञान के क्षेत्र मे जो भी प्रगति पिछले डेढ़ सौ वर्षो मे की है, इतिहास इस बात का साक्षी है कि उस प्रगति का कारण अंग्रेजी भाषा किसी प्रकार न थी।

अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं की शब्द-सृजन-शक्ति

इग्लैण्ड मे विज्ञान का प्रवेश 'लातनी' और यूनानी भाषा के द्वारा हुआ। यदि मैं भूलता नही, तो इग्लैण्ड मे रोजर वेकन ने अपना कार्य अधिकतर इन्ही भाषाओ के ज्ञान के सहारे किया और उसके पश्चात् भी अनेक वर्षो तक इंग्लैण्ड के विद्वान् इन भाषाओ का सहारा अपनी विधि, अपनी शिक्षा, अपने विज्ञान के लिये लेते रहे। सच तो यह है कि आज भी अंग्रेजी मे यह शक्ति नही कि वह नये-नये वैज्ञानिक तथ्यो के लिए अपने निज से शब्द दे सके। आज भी इंग्लैण्ड के वैज्ञानिक इन तथ्यों की अभिव्यक्ति के लिए 'लातनी' या 'यूनानी' भाषा का सहारा लेते है। मुझे पूर्ण विश्वास है, कि जो लोग दुहाई देते है कि अंग्रेजी के बिना भारत अन्धकार के गर्भ में चला जायगा, उनमे से अनेक वनस्पतिशास्त्र के ऐसे एक भी शब्द को न समझ सकेंगे, जो उन विज्ञान के क्षेत्र में अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त किये जाते है। वे सभी शब्द अंग्रेजी मे यूनानी या लातनी भाषा से लिये है और मैं तो यह समझता हूँ कि सम्भवत. उन्हे निन्यानबे प्रतिशत अंग्रेजी भी समझ में आती हो। मैं नही जानता कि इस ओर अंग्रेजी के हिमायतियों की दृष्टि गयी है या नही कि अंग्रेजी भाषा मे शब्दनिर्माण की शक्ति लगभग नही के बरावर है और उस दृष्टि से सभ्य भाषाओ मे उतनी दरिद्र भाषा संभवतः ससार मे कोई न होगी। हिन्दी के सम्बन्ध मे बहुधा इन लोगो द्वारा यह कहा जाता है कि वह दरिद्र भाषा है। हिन्दी ही क्यों, ये लोग सब भारतीय भाषाओ को दरिद्र भाषा मानते है, किन्तु मेरा यह निजी अनुभव है कि हिन्दी मे नये शब्द निर्माण करने की नैसर्गिक शक्ति है। उदाहरणार्थ सस्कृत का एक शब्द चूर्ण कई वस्तुओ को व्यक्त करने के लिए काम मे लाया जाता था, किन्तु हिन्दी ने उसी आधार पर कई शब्द बना लिये। चून, चूना, चूर्ण ये तीन शब्द पृथक्-पृथक वस्तुओं को व्यक्त करते है और इनका निर्माण हिन्दी ने अपनी शक्ति के आधार पर किया है। ऐसे एक नही, अनेक उदाहरण आपको हिन्दी भाषा में मिलेंगे।

इसलिये यह कहना कि हिन्दी दरिद्र भाषा है, पूर्णतः निराधार है। हाँ, जिन लोगों को हिदी के 'अ' 'आ' का ज्ञान नही, जिन्होने अपने जीवन का एक क्षण हिन्दी-साहित्य के अध्ययन मे नही लगाया और जिन के मन मे हिन्दी के प्रति अकारण ही विद्वेष और उपेक्षा का भाव है, और रहा है, यदि वे यह कहने लगे ,कि हिन्दी दरिद्र भाषा है, तो आश्चर्य की बात ही क्या। किन्तु, यदि शुद्ध भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अंग्रेजी और हिन्दी का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय, तो यह पता चलेगा कि केवल भाषा की दृष्टि से कौन-सी भाषा बलशाली है और कौन-सी असहाय और दुर्बल। जो भी हो, इस सम्बन्ध मे क्या एक क्षण के लिये भी शंका हो सकती है कि अंग्रेजी विज्ञान के लिए एकमात्र देववाणी नही है। यदि भगवान् ने यही विधान कर दिया होता कि अग्रेजी ही विज्ञान की भापा होगी, तो फिर क्या रूसी, फ्रासीसी, जर्मन या अन्य देश-वासी विज्ञान के क्षेत्र मे ऐसी ही प्रगति कर पाते। यह केवल उपहासास्पद बात है कि अंग्रेजी का प्रगति से कोई विशेष सम्बन्ध है। प्रगति तो केवल इस पर आश्रित है कि मनुष्य की यह भावना और विश्वास हो कि जो भूतकाल से मिला है, उस पर ही पूर्णतः आश्रित न रहकर, उस से ही सर्वथा बॅधे न रह कर, जीवन को अधिक समद्ध और आनन्दमय बनाने के लिए नये-नये प्रयोग किये जायँ, नई-नई दिशाएँ खोजी जायँ। यह धारणा क्या हम इस देश के वासियो मे अपनी भाषा द्वारा नही फैला सकते ? क्या यह विचार उनके मन मे नही पैठा सकते ? क्या इस सम्बन्ध मे एक क्षण के लिए भी किसी प्रकार की शका होनी चाहिए ? अतः मेरा निवेदन है कि अग्रेजी के पक्ष मे इस प्रकार का तर्क देना बड़ा असगत और अत्यन्त उपहासास्पद है।

भारत की एकता के लिए क्या अंग्रेजी आवश्यक है ?

ऐसी ही एक दलील यह है कि भारत की एकता का आधार और स्रोत अग्रेजी है। यह कहा जाता है कि भारत के विभिन्न प्रदेशो मे विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं और वहाॅ के वासियो के लिए परस्पर विचार-विनिमय करना केवल अग्रेजी के माध्यम द्वारा ही सभव है ; अग्रेजी जाननेवाले इन विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशो के प्रत्येक नगर और नगरी मे मिलते है, इस कारण अग्रेजी भाषा का प्रयोग करनेवाले के लिए भारत मे किसी स्थान मे कठिनाई नही होती ; यह बात भारत की किसी अन्य भाषा के सम्वन्ध मे लागू नही है, इसलिए आज जो सुविधा अंग्रेजी के द्वारा हमें प्राप्त है और जिस सुविधा के कारण एक दृष्टि से भारत की एकता बनी हुई है, उसे छोड देने मे कोई विशेष तुक नजर नही आती। इसके अतिरिक्त इनका यह दावा भी है कि अग्रेजी साहित्य के अध्ययन के कारण ही भारत में राष्ट्रीय भावना जागृत

हुई और भारत में लोग यह सोचने लगे कि हम किसी जाति-विशेष या प्रदेश-विशेष के न होकर सब भारत माता की सन्तान है ; अत अंग्रेजी हमारी राष्ट्रीयता की जननी है, पोषिका है , इसलिए यदि अंग्रेजी हमारे देश से हट गयी, तो परस्पर विचार-विनिमय के अभाव के कारण और राष्ट्रीय एकता के सूत्र अभाव के कारण हमारा राष्ट्र छोटी-छोटी इकाइयों में बँट जायगा। कुछ अंग्रेजी के पक्षपाती यह तर्क भी उपस्थित करते है कि अंग्रेजी ही ऐसी भाषा है, जिसके पढने और अध्ययन मे हमारे देश के विभिन्न प्रदेश वालों को एक समान प्रयास करना पडता है, एक-सी ही कठिनाइयो से सघर्ष करना पड़ता है ; किन्तु, यदि भारत की कोई एक भाषा भारत की राजभाषा बन गई, तो अन्य प्रदेश वालों को उस भाषा को सीखने मे जितनी कठिनाई होगी ; जितना प्रयास करना होगा, उतनी कठिनाई उस भाषा के बोलनेवालो को न उठानी पड़ेगी और इस प्रकार उस भाषा के बोलनेवालो को अन्य भाषा-भाषियो की अपेक्षा राजकीय जीवन मे अधिक सुविधाएँ प्राप्त हो जायँगी और इस प्रकार अन्य प्रदेशवासियो के प्रति यह घोर अन्याय होगा। कहते है कि जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले। अंग्रेजो का जादू इस सम्बन्ध मे पूरा उतरता है। वे चले गये, किन्तु, जो मन्त्र वे फूँक गये थे, जो पट्टी वे पढ़ा गये थे, वह आज अपना पूरा प्रभाव दिखा रही है। इस बात को आप लोग न भूले होंगे कि अंग्रेज भारत मे अपने राज्य के पक्ष मे मुख्यत. यही तर्क देते थे कि भारत की एकता उसी राज्य की नीव पर आधारित है। उनके आने के पहले भारत छोटे-छोटे टुकड़ो में बँटा हुआ था, और उसकी जनता राष्ट्रीयता से सर्वथा अपरिचित थी। भारत में उसकी यह सर्वोक्ति थी कि जब तक भारत में हमारा राज्य है, तभी तक भारत में एकता है, यदि हम यहाँ से एक क्षण के लिए भी अपना प्रभुत्व हटा लेंगे, तो भारत के पुनः टुकड़े-टुकडे हो जायेंगे और यहाँ परस्पर ऐसी मारकाट मच जायगी, ऐसा अनाचार और अत्याचार फैल जायगा कि किसी भी भारतीय कुमारी का सतीत्व बचा न रहेगा। उनका यह भी तर्क था कि इस देश के विभिन्न धार्मिक सप्रदायों, विभिन्न भाषा-भाषी और प्रादेशिक जातियों के अधिकारो की रक्षा वे निष्पक्ष भाव से करते हैं और सब को सम न्याय प्रदान करते है ; किन्तु, यदि वे चले गये, तो भारत का सम्प्रदाय-विशेष या जाति-विशेष या प्रदेश-विशेष दूसरे सम्प्रदायों, दूसरी जातियों और दूसरे प्रदेशों पर छा जायगा और उनको पैरो तले रौद देगा। आप देखेंगे कि अंग्रेजों के इन्हीं तर्कों की पुनरावृत्ति आज हमारे अंग्रेजी के हिमायती इस सम्बन्ध में कर रहे हैं। अपने गौराग गुरुओं की शिक्षा का कितनी कुशलता से वे पालन कर रहे है। किन्तु, यह सब तर्क थोथे है, निराधार है। थोड़े से विचार से यह स्पष्ट हो जायगा कि इस सब स्वार्थ के पीछे उनका वैसा ही स्वार्थ है, जैसा कि अंग्रेजों का स्वार्थ उनके अपने राज्य

के समर्थन के पीछे था। अग्रेजी के द्वारा इन लोगों के लिए यह सभव हो रहा है कि वे भारत की जनता के कधे पर बैठकर भारत की जनता से उसी प्रकार परिश्रम करा कर जैसे कि अग्रेज कराते थे, स्वय सुख भोगें, गुलछर्रे उड़ाये। सिदबाद नाविक की कहानी मे जिस प्रकार हम यह पढते थे कि सिदबाद की गर्दन पर सवार होकर उसके गले को अपने पाँवो मे कसकर और दबाकर उस व्यक्ति ने सिदबाद को दौड़ाया उससे परिश्रम कराया और स्वयं आनन्द भोगा, उसी प्रकार आज ये आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज से निकले श्यामवर्ण वाले; किन्तु, आग्ल चेतना और आत्मा वाले हमारे देश की जनता के कधे पर कसकर आसन जमाये बैठे है और हर प्रकार से उसका शोषण कर रहे है तथा भोली भाली विभिन्न प्रदेशो की जनता को विमुख करने को इस प्रकार के तर्क दे रहे है। नही तो क्या वे यह नही जानते कि इस देश मे अग्रेजी जानने वालों की सख्या एक प्रतिशत से अधिक नही है और इस एक प्रतिशत की एकता भारत की एकता नही कही जा सकती। क्या इस बात से इनमे से कोई भी इन्कार कर सकता है कि आज भी लाखो की सख्या मे सुदूर दक्षिण में ग्रामवासी, जिन्हे अग्रेजी का एक शब्द भी नही आता, उत्तर भारत के काशी, मथुरा, हरिद्वार और बदरीनाथ जैसे महान् तीर्थस्थानों मे प्रतिवर्ष यात्रा के लिए आते हैं। क्या यह बात सत्य नही है कि उत्तर भारत के अनेक ग्रामवासी सुदूर रामेश्वरम् की यात्रा करने के लिए सहस्रों की संख्या मे जाते हैं ? क्या इन लोगो का काम अग्रेजी के बिना नहीं चल सकता ? क्या वे अपने सब धार्मिक संस्कार और जीवन के अन्य व्यापार अपनी यात्रा मे हिन्दी के माध्यम द्वारा नही करते ? क्या यह सत्य नहीं है कि भारत के प्रत्येक धार्मिक तीर्थ-स्थानो मे हिन्दी जाननेवाले पढ़े नहीं मिलते या नही होते ? तब फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि भारत के विभिन्न प्रदेशवासियों के विचार-विनिमय का माध्यम केवल अंग्रेजी है। आसाम के चाय बागानो मे, कलकत्ते के बड़े बाजार मे, बम्बई की चौपाटी में और सुदूर दक्षिण में सर्वत्र ही हमे हिन्दी भाषा-भाषी श्रमिक कार्य करते मिलते है। हिन्दी भाषा-भाषी व्यापार करते मिलते है। हिन्दी भाषा-भाषी पंडे धार्मिक संस्कार करते मिलते है। सचमुच यह महत् आश्चर्य की बात होती, यदि ऐसा न होता। अंग्रेजी तो अभी कुल एक सौ वर्ष से ही इस देश में आयी थी। उससे पहले भी हमारे देश के विभिन्न प्रदेशों मे विचार और वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था ; अतः स्वाभाविक ही मध्यदेश की यह भाषा हिन्दी उस विचार-विनिमय की माध्यम बन गयी थी और बनी रही और बनी है और बनी रहेगी।

अतीत और वर्तमान वर्ग-संघर्ष और विग्रह का कारण कौन

अग्रेजी वर्ग अधिक-से-अधिक यही कह सकता है कि उसकी अपनी एकता अग्रेजी

के आधार पर है। यद्यपि इस सम्बन्ध मे भी पूरी पूरी शका की जा सकती है। यदि वर्तमान भारतीय राजनैतिक कलह का वास्तविक कारण ढूँढा जाय, तो हमे यह पता चलेगा कि इस अंग्रेजी से मोह रखनेवाले ही व्यक्तियो मे परस्पर सर्वाधिक द्वेष और स्पर्द्धा वर्तमान है। क्या यह सत्य नही है कि भारत की राजनीति मे जो विषवृक्ष बोया गया है, वह उन लोगो ने बोया या उन लोगों के माध्यम द्वारा बोया गया, जो इस बात के लिए लालायित थे कि अग्रेजी साम्राज्य द्वारा इस देश की जनता से दुही जानेवाली सपत्ति में उनका भी कुछ साझा हो जाय! अग्रेजी साम्राज्य के तन्त्र में छोटी-मोटी नौकरी पाने के लिए कौन लालायित था, वही तो जिन्होंने यह अग्रेजी पढ ली थी। नौकरियाँ थोड़ी थी और अग्रेजी पढे-लिखे अधिक। अतः इन अंग्रेजी पढे-लिखे लोगों ने परस्पर एक दूसरे की जड़ काटने के लिए हर प्रकार के साम्प्र-दायिक, प्रादेशिक और भाषा-जाति विभेद पैदा किये और उन्हें तीव्रातितीव्र किया। क्या यह सत्य नही है कि पाकिस्तान के आदोलन के जन्मदाता इसी अंग्रेजी वर्ग के कुछ लोग थे? उन्होने भोलीभाली जनता को अपने स्वार्थ के लिए गुमराह किया और देश को टुकडे-टुकड़े कर डाला। क्या यह सत्य नही है कि इसी अग्रेजी वर्ग के कुछ लोगों ने अंग्रेजों की शह पर इस देश मे उत्तर और दक्षिण का प्रश्न उठाया और उत्तरवासियों के विरुद्ध दक्षिण के कुछ प्रदेशों मे एक प्रकार का जेहाद प्रारम्भ कर दिया। यदि ऐसा न होता, तो आश्चर्य की बात होती। जिन लोगों ने सर्वप्रथम अंग्रेजी पढ़नी आरम्भ की थी, उन लोगों ने उसका अध्ययन ज्ञानोपार्जन, विज्ञान और दर्शन के ज्ञान के लिए नहीं किया था ; वरन् हमारे देश के पूज्य गुरुजनो के आदेश की अवहेलना कर अधिकाशतः इस प्रयोजन से आरम्भ किया था कि वे भी अंग्रेजी राज्य की लूट में कुछ हिस्सा पाये। हो सकता है कि कुछ ऐसे व्यक्ति रहे हों, जिन्होंने अग्रेजी का अध्ययन अग्रेजों की सफलता का रहस्य जानने के लिए आरम्भ किया हो ; किन्तु, ऐसे लोगों की संख्या नगण्य थी। और, इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि अधिकांशतः ऐसे लोग स्वार्थरत थे, अपने ही निज सुख और समृद्धि की भावना से प्रेरित थे। भला वे लोग भारत की एकता की बात सोचें, यह तो महान् आश्चर्य की बात होगी।

हम इन्हें दुभाषिया कहें या बहुरूपिया

यह बात आज भी है कि जो लोग अंग्रेजी की हिमायत करते है, उनमें से निन्यानवे प्रतिशत भारत की एकता की बात मन में नहीं रखते, वे केवल इस एकता की दुहाई अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये देते हैं। नही तो क्या यह प्रश्न उनके मन में नही उठता कि आज अंग्रेजी के कारण भारत की निन्यानवे प्रतिशत जनता और राज्य के बीच

खाई पैदा हो गई है और बढती जा रही है। क्या उनको यह सोचने का समय नहीं मिलता कि अंग्रेजी के कारण आज भारत के निन्यानवे प्रतिशत नागरिक राज्य-दरबार मे प्रवेश नही कर पाते। उनकी सतान को कही कोई राज्यपद नही मिलता। मूक, निरीह, असहाय रहे आते है। उनके हृदय मे यह भावना जागृत नही हो पाती कि यह राजतन्त्र, यह देश की सपत्ति, इस देश की विशाल भूमि, इसके नदी, पहाड़ सब उनके है, आज भी वे अकिचन बने हुए है और यही समझते है कि उनके सिर पर बैठी सरकार उनकी भाग्य-विधाता है, वे स्वय उनके सचालक नही। क्या भारत की एकता के लिए यह आवश्यक नही कि भारत के जन-जन के हृदय मे यह विचार-धारा तरगित होने लगे कि हम सबका भाग्य एक है, हम सब की सपत्ति एक है, हम सबका इतिहास एक है। मै विनम्रता से पूछता हूँ कि क्या यह बात अंग्रेजी भाषा के द्वारा सभव हो सकती है? क्या यह स्पष्ट नही कि यदि अंग्रेजी के माध्यम द्वारा यह बात सभव होती, तो फिर हमारे ग्रामो मे, हमारी साधारण जनता से ये लोग अंग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा वार्तालाप करते, अपने व्याख्यान अंग्रेजी मे देते। मै इस बात की चुनौती देता हूँ कि जो लोग अंग्रेजी के द्वारा भारत की एकता बनी रहने की बात कहते है, वे जरा साहस कर हमारे गाँवो मे जाकर हमारी जनता से केवल अंग्रेजी मे बोले और अपने इस तर्क को चरितार्थ करे। पर, मै जानता हूँ कि उनमे से एक मे भी यह सामर्थ्य नही। इन्हे हम दुभाषिया कहे या बहुरुपिया? कैसा महान् आश्चर्य है कि देश की एकता को छिन्न-भिन्न करनेवाले देश की एकता की दुहाई दे। देश की राष्ट्रीयता को तिलांजलि देने वाले, इस देश की वेशभूषा, खान-पान, आचार-विचार, रीति-रिवाज, इतिहास और सस्कृति का उपहास और तिरस्कार करने वाले व्यक्ति और पाश्चात्य, योरप एक विशिष्टत: इग्लैण्ड को अपना सास्कृतिक और आध्यात्मिक घर और देश माननेवाले व्यक्ति राष्ट्रीयता का यह बाना दिखाने के लिए पहन लें। इनकी राष्ट्रीयता का अर्थ इस देश को छोटा इग्लैण्ड बनाना है और इसीलिए यह स्वाभाविक है कि अपने स्वप्न के उस निर्माण के लिए ये लोग अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य समझे। किन्तु, यदि विचारपूर्वक हम सोचे, तो स्पष्ट पता चल जायगा कि हमारे देश मे राष्ट्रीय भावना की उत्पत्ति किसी भी जाति मे उस समय होती है, जब वह आर्थिक विकास की उस स्थिति मे पहुँच जाती है, जब कि केवल ग्राम, केवल नगर अथवा केवल जनपद के क्षेत्र मे हों। उसका आर्थिक व्यापार सीमित नही रहता और नही रह सकता। उस समय इन छोटी इकाइयों की सीमा को लाँघकर अनेक नगरवासी, अनेक ग्रामवासी, अनेक जनपद-वासियो के हृदय परस्पर बिध जाते है और उन्हे यह दिखने लगता है कि हमारे हित दूसरे देशवासियो के हित से पृथक् है और परस्पर एक हैं। कभी-कभी राष्ट्रीय भावना की जागृति उस समय होती है

जब एक जाति का किसी विदेशी जाति से सघर्ष हो जाता है। हमारे देश मे इस प्रकार की आर्थिक स्थिति यान्त्रिक और शक्ति-चालित उद्योग के विकास के कारण पैदा हुई और फैली है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है, जिसकी पुष्टि आपको इटली, फ्रास, जर्मनी-जैसे देशो में राष्ट्रीय भावना की जागृति के इतिहास से मिल जायगी। यह संसार विदित है कि आयरलैंण्ड में राष्ट्रीय भावना का उद्रेक उस भाषा के पुर्ननिर्माण से हुआ, जिसका अग्रेजो ने बीज तक लगभग नष्ट कर दिया था। आयरलैण्ड के राष्ट्रीय नेता गैलिक भाषा के पुर्ननिर्माता थे, पुनर्प्रतिष्ठाता थे। क्या यह सत्य नही है कि हमारे देश में भी कांग्रेस का आंदोलन तब तक निष्प्राण था, जब तक वह केवल अग्रेजी जाननेवाले वर्ग तक सीमित था और उसमें जीवन-ज्योति उसी समय जगी, जब पूज्य बापू ने हिन्दी को और भारतीय भाषाओं को उस आंदोलन का आधार बनाया और ग्राम-ग्राम मे, नगर-नगर मे भारतीय भाषाओ के माध्यम द्वारा स्वाधीनता की अलख जगा दी। भारतीय राष्ट्रीयता का इतिहास भारतीय जनसाधारण का इतिहास है। आज यदि अंग्रेजी जाननेवाला वर्ग इस महान् सृष्टि को हथिया लेना चाहता है, इसका गौरव अपना बना लेना चाहता है, तो कोई आश्चर्य की बात नही। जिसकी रग-रग मे स्वार्थ बसा है, उससे और क्या आशा की जा सकती है ? पर उसके लिए यह सभव नही कि वे इस बनी-बनाई राष्ट्रीयता को कायम रख सकें। क्या यह स्पष्ट नही है कि अग्रेजी का यदि आधिपत्य बना रहा, यदि उसने अपना शोषण कायम रखा, तो भारतीय जन-जीवन शोषक और शोषितों के परस्पर सघर्ष से खड-खड हो जायगा। कैसे अचम्भे की बात है कि ये लोग भी न्याय की बात करते हैं, पर ऐसा लगता है कि न्याय की इनकी अपनी विशेष परिभाषा है। सम्भवतः ये लोग इस बात को न्याय नही समझते कि भारत के प्रत्येक नर-नारी के लिए यह सुविधा प्राप्त हो कि वह इस देश के राजतन्त्र मे सुगमता से प्रवेश कर सके, राज-काज के सचालन में भाग ले सके, राजपदों पर आसीन हो सके। यदि ये लोग इस बात को न्याय मानते, तो क्या यह न सोचते कि यह बात तब तक सभव न होगी, जब तक कि भारत का राजतन्त्र अग्रेजी मे लिपटा रहेगा। जैसा मैं अभी कह चुका हूँ कि भारत की निन्यानवे प्रतिशत जनता के लिये यह सम्भव नही है कि वह इस राजतन्त्र में किसी प्रकार से भाग ले सके और वह इसलिए सम्भव नही है कि वह अग्रेजी नहीं जानती और इस राजतन्त्र के द्वार पर बडे मोटे अक्षरों में लिखा है कि अंग्रेजी न जानने वालो के लिए यहाँ प्रवेश निषिद्ध है। संभवतः इन लोगो की न्याय की परिभाषा वही है, जो साधारण दफ्तरी लोगों की होती है। दफ्तरो में काम करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति यह मानता है कि उसकी तरक्की हुई, तो न्याय हुआ और तरक्की न हुई, तो अन्याय ; अर्थात् वहाँ निजी स्वार्थ का दूसरा नाम न्याय है। जब ये लोग न्याय की

बात करते हैं, तो वहाँ भी यही गध आती है—नौकरी मे हमारी प्रगति रुक जायगी, हम नौकरी में उतने आगे नही बढ़ पायेंगे, जितने अन्य ; अर्थात् इनके निजी स्वार्थ का ही नाम न्याय है ; पर ये लोग इस बात को प्रदेश-प्रदेश के बीच न्याय का बाना पहना देते है, मानों कि इनके अपने प्रदेश मे ये स्वयं अपनी साधारण जनता के प्रति न्याय कर रहे हों, उसके अधिकारों की रक्षा के लिए लालायित हों। स्वयं अपने स्वार्थ पर डटे रह कर अपनी ही वैयक्तिक प्रगति को ध्यान में रखकर और अपनी जनता के प्रति पूर्ण अन्याय करते रह कर ये लोग न्याय की दुहाई दे, इससे बडी विडम्बना और क्या हो सकती है ? अग्रेजी ही परस्पर इन प्रदेशो मे नौकरी के सम्बन्ध मे समता रख सकती है, इससे बड़ी अनर्गल बात और क्या हो सकती है ? क्या इन लोगों को यह नही दिखाई पडता कि इसी तर्क के आधार पर उन्हे एक दिन अग्रेजो को भी वापस बुलाना पड़ेगा। यदि भारत मे भारत की किसी भी भाषा के प्रयोग से अन्य प्रदेशो के प्रति अन्याय होगा, तो फिर क्या भारत के किसी प्रदेश के व्यक्ति के हाथ मे नेतृत्व जाने से इन लोगो को अन्य प्रदेशो के प्रति अन्याय न लगेगा और तब क्या ये लोग इस बात की दुहाई न देने लगेगे कि भारत का नेता भारतीय न होना चाहिए, वह तो इनके आग्ल गुरुओं मे से एक होना चाहिए। मै आप सब का ध्यान इस भयावह बात की ओर विशेष रूप से खीचना चाहता हूँ कि जो देशभाषा को विदेशी मान सकते है, वे देशभाई को भी विदेशी मान सकते है और अपने भाई का गला काटने के लिए विदेशियो को भी आमन्त्रित कर सकते है।

प्रजातन्त्र की सफलता क्या अंग्रेजी पर निर्भर है ?

न्याय शब्द का जिस प्रकार उल्टे अर्थ में ये लोग प्रयोग करते है, सम्भवत: उसी प्रकार इनके प्रजातन्त्र शब्द का अर्थ है। साधारणत: प्रजातन्त्र से यही बोध होता है कि प्रजा अपना शासन स्वयं करे। राज्यतन्त्र में उसका प्रमुख भाग हो। अपनी राजनैतिक समस्याओ पर वह स्वय सोच-विचार कर अपनी नीति निर्धारित करे। स्पष्ट है, कि ऐसा राजनैतिक तन्त्र तभी स्थापित हो सकता है जब उसका सारा काम-काज जनता की अपनी भाषा मे हो; अत: जब भी कोई देश साम्राज्यवादिता के चगुल से छूटकर स्वतन्त्र हुआ है, उसने तुरन्त अपना सारा काम-काज अपनी जनता की भाषा मे करना आरम्भ कर दिया है। संसार के इतिहास मे अन्यत्र ऐसा कोई उदाहरण न मिलेगा, जहाँ स्वतन्त्र देश अपनी भाषा में अपना राज-काज न चलाता हो। केवल हमारा ही अनोखा देश है कि जो स्वतन्त्र कहलाता है ; किन्तु जिसका राज-काज देश की भाषा मे न होकर उस भाषा मे होता है, जो हमारे पिछले शासकों की भाषा थी और जो हम पर उन्होने अपनी राजनैतिक शक्ति का प्रयोग

कर लादी थी। इससे भी अनूठी बात यह है कि यहाँ का राजतन्त्र प्रजातन्त्र कहलाता है, जब कि यहाँ निन्यानवे प्रतिशत जनता उस भाषा से सर्वथा अपरिचित है, जिस में यहाँ का सारा राज-काज शासक-वर्ग करता है। इस अनोखेपन पर गर्व करें या आँसू बहायें ? पर, कैसा आश्चर्य है कि यहाँ का अंग्रेजी जानने वाला वर्ग कहता है कि यदि अग्रेजी भाषा न रखी गई, तो इस देश मे प्रजातत्र का प्रयोग सफल न हो सकेगा। इन लोगों के अनुसार प्रजातन्त्र हमने इग्लिस्तान से आयात किया है। इन लोगो का कहना है कि प्रजातांत्रिक प्रणाली और संसदीय राजतन्त्र जगत् को इनके परम गुरु इग्लैंड की देन है। इग्लैण्ड की इस अपूर्व देन के हृदयतल मे अग्रेजी बसी हुई है। तत्सम्बन्धी सारा साहित्य अग्रेजी भाषा में है। उसकी पारिभाषिक शब्दावली अग्रेजी भाषा मे है। उसका विधि-विधान सब अग्रेजी मे है ; अतः यदि हमें इस प्रजातांत्रिक और संसदीय प्रणाली को सफल बनाना है, इसकी जडे इस देश मे मजबूत करनी है, तो हमें अंग्रेजी भी अपने यहाँ रखनी है और उसके माध्यम द्वारा अपना कामकाज चलाना है। मुझे इस बात पर आश्चर्य नही कि ये लोग समझे कि यह जगत् मे जो कुछ श्रेष्ठ है, जो कुछ सुन्दर है, जो कुछ उपास्य है, वह सब इनके परम गुरु इग्लैण्ड का है और इग्लैंड मे हैं ; किन्तु इस बात को समझने के लिए अधिक तर्क की आवश्यकता नही कि प्रजातात्रिक प्रणाली से इंग्लैंड का कुछ विशिष्ट सबध नही है। फ्रांस की राज्यक्रांति तक इंग्लैंड में केवल सामन्तों का राज्य था और वहाँ जनसाधारण को बालिग मताधिकार तो पिछले महायुद्ध के पश्चात् मिला। इसके विपरीत युग-युगान्तर से हमारे देश मे अपने सामाजिक और सामूहिक मामलों की व्यवस्था ग्राम-पञ्चायतों के द्वारा करने की परिपाटी चली आ रही थी और हमारे देश के लोग उस परिपाटी के अभ्यस्त थे। मैं नही जानता कि अग्रेजी-वर्ग के लोग उस पञ्चायत-प्रणाली को प्रजातात्रिक प्रणाली मानने के लिए तैयार हैं या नही, समाज-शास्त्र के निष्पक्ष विद्यार्थी तो उस प्रणाली को प्रजातात्रिक प्रणाली का आदि रूप सर्वदा स्वीकार करते रहे है। तथ्य तो यह है कि किसी देश की भी शासनप्रणाली उस देश के आदर्शों और भावनाओं के अनुसार होती है ; अतः हमारे देश में भी वर्तमान प्रणाली की सफलता, विफलता हमारे इतिहास, हमारी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था, हमारे आदर्शों और भावनाओ पर निर्भर करेगी, न कि अंग्रेजी पर। चाहे हम कैसी ही दृढ़ शृंखला से अपने को इग्लैंड की चौखट से कसकर कितना ही क्यों न बाँध ले, चाहे हम "मे" की ससदीय प्रणाली की प्रसिद्ध पुस्तक के कितने ही परायण क्यों न करें, हमारे देश का राज-तन्त्र उस रूप में कार्य नही कर सकता, न ही कर सकेगा, जिस रूप में कि वह इंग्लैंड मे कार्य करता रहा है ; अतः

इस बात मे लेशमात्र तथ्य नही कि अग्रेजी बनाये रखने से हम अपने इस तन्त्र को ठीक उसी ढर्रे पर चला सकेंगे, जैसे कि वह इंग्लैड मे चलता है। यह हमारा अपना है। इसका निर्माण हमारी सर्वप्रभुता-सम्पन्न जनता ने अपनी सविधान-सभा के द्वारा किया है। यह हमारे देश की समस्याओं को ध्यान में रख कर बना है और इसमे अनेक ऐसी बाते हैं, जो न तो इग्लैड मे और न इग्लैड के किसी अधिराज्य पायी जाती है ; अतः इस बात का प्रयास करना कि यह पूर्णतया भारतीय राजतन्त्रमे इग्लैड के राजतन्त्र के ही ढर्रे पर चले, इस तन्त्र का अपमान है और हमारे देश का और जनता का अपमान है। कम-से-कम इस आधार पर अग्रेजी को रखने का समर्थन तो घाव पर नमक छिड़कने के समान है।

देश के द्रुत आर्थिक विकास के लिए अंग्रेजी की आवश्यकता एक भ्रम

सब से अनोखी बात जो अंग्रेजी के पक्षपाती उसके समर्थन मे देते है, वह यह है कि हमारे द्रुत आर्थिक विकास के लिए अग्रेजी की परम आवश्यकता है। कहा यह जाता है कि द्रुत आर्थिक विकास के लिए हमे अनेक इंजीनियर, शिल्पी और वैज्ञानिक चाहिए। हमारे पास इस समय सारा साहित्य अग्रेजी मे उपलब्ध है और भारतीय भाषाओं मे वह साहित्य उपलब्ध नही है ; अतः हम पर्याप्त संख्या में इजीनियर, वैज्ञानिक और शिल्पी इस अग्रेजी साहित्य के द्वारा शीघ्रातिशीघ्र तैयार कर सकते है। यदि हम थोथी राष्ट्रीय भावना से बँधे रहकर यह प्रयास करे कि हमारी देशी भाषाओं के माध्यम द्वारा हम अपने विद्यार्थियों को इन विषयों की शिक्षा दे, तो हमे अनेक वर्ष व्यर्थ मे यह साहित्य अपनी भाषाओ में तैयार करने के लिए खो देने पडेगे और इस प्रकार हमारा आर्थिक विकास न हो पायेगा। जिस ढग से यह बात कही जाती है, उससे ऐसा लगता है कि कम-से-कम यह तर्क तो अकाट्य है। किन्तु, है यह भी धोखेभरी बात। अब तक हम सब यही समझते रहे है और मानते रहे है कि शिक्षा का मूलमंत्र परिचित के आधार पर अपरिचित का बोध कराना है। इसी कारण ससार-भर के शिक्षाशास्त्री यह मानते हैं कि मातृभाषा के माध्यम द्वारा समय और शक्ति की पूर्ण मितव्ययिता के साथ और अत्यन्त तीव्र गति से बालक को शिक्षा दी जा सकती है ; अतः यह स्पष्ट है कि भारत मे तीव्रातितीव्र गति से देशवासियो को शिक्षित करने का माध्यम अग्रेजी हरगिज नही हो सकती। केवल अग्रेजी सीखने में ही हमारे विद्यार्थी को कम-से-कम दस वर्ष व्यतीत कर देने पड़ते हैं। इसके विपरीत उसे अच्छा कामचलाऊ ज्ञान एक-दो वर्ष मे ही हो जाता है। स्पष्ट है, यदि हम देश मे हर प्रकार की शिक्षा अपनी मातृभाषा द्वारा अपने युवकों को दें, तो वह लगभग आधे समय मे उतना ज्ञानोपार्जन कर लेगे, जितना आज वे

अंग्रेजी के माध्यम द्वारा करते है। हर विद्यार्थी के कम-से-कम पॉच छै वर्ष बच जायेंगे और हम यदि इन वर्षो को विद्यार्थियों की सख्या से गुणा कर दे, तो हमको पता चलेगा कि हम अपने देशवासियो के लाखो वर्ष इस प्रकार बचा लेंगे और जो समय इस प्रकार बचेगा, उसे देश के विभिन्न प्रकार के अधिकाधिक आर्थिक विकास मे लगा सकेगे। यह दलील कि हमारी भाषाओं मे साहित्य नही है, कुछ महत्त्व नही रखती। यदि हमने उस धन और समय का, जो हम आज अग्रेजी माध्यम के कारण व्यर्थ गवॉ रहे है, शतांश भी आवश्यक साहित्य के निर्माण के लिए लगाया होता, तो अब तक हमारे पास अपनी भाषाओं में बरसों पूर्व सब आवश्यक वैज्ञानिक और शिल्पिक साहित्य हो जाता। पर, हमारे अग्रेजी वर्ग के लोगो ने ही हर प्रकार की बाधा खडी करके यह नहीं होने दिया। इस प्रकार के साहित्य का निर्माण तब होता है, जब उसके लिए मॉंग हो ; किन्तु, जब अग्रेजी के माध्यम द्वारा ही शिक्षा दी जाती रहे, तो अपनी भाषाओं मे ऐसे साहित्य का निर्माण होने का प्रश्न पैदा हो ही कैसे सकता है। न तो कोई लेखक और न कोई प्रकाशक इस बात के लिए तैयार होगा कि वह अपना समय और धन उस साहित्य के तैयार करने और प्रकाशित करने मे लगाये, जिसके माँग के सब द्वार यत्नपूर्वक पूर्णत· बन्द कर दिये गये हों।

वैज्ञानिक उधार-खाता

हमारी भाषाओं मे इस प्रकार का साहित्य पहले हो और तब वे शिक्षा का माध्यम बनाई जाये, यह बात किसी से यह कहने के समान है कि तैरना पहले सीख लो और पानी मे पीछे घुसो। इस प्रश्न के एक पहलू और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहलू पर अब तक लोगो की दृष्टि नही गई है। विज्ञान का इतिहास हमे यह बताता है कि नये-नये वैज्ञानिक-तथ्यो की खोज और नये-नये यत्रों का निर्माण विश्वविद्यालय से उपाधि-प्राप्त विद्यार्थियों ने इतना नही किया है, जितना कि उन लोगों ने किया है। जिन्हे कि जीवन मे स्वयं की समस्याएँ स्वय अपनी प्रतिभा से सुलझाना पड़ती हैं; अर्थात् श्रमिकों ने और शिल्पियों ने। हम यह समझे बैठे है कि हमारे विश्वविद्यालयों में जो पाठ पढाये जाते है, उन्ही के सहारे इन विश्वविद्यालयो के स्नातक हमारी सब यांत्रिक और आर्थिक समस्याओं का हल कर देंगे। एक प्रकार से देखा जाय, तो विज्ञान के क्षेत्र मे भी हम इसी भरोसे बैठे हैं कि पाश्चात्य जगत से मिले वैज्ञानिक उधार-खाते से हमारा उसी प्रकार काम चल जायगा, जिस प्रकार कि आर्थिक क्षेत्र मे विदेशी धन के उधार खाते से हम चला रहे है ; किन्तु भारत के भौगोलिक वातावरण से और भारत मे प्राकृतिक परिस्थितियो से सघर्ष करने के लिये केवल पाश्चात्य जगत् की उधार से हमारा काम नही चलने का और यदि किसी सीमा तक चल भी जाय,

तो हम अपने देश को विज्ञान के उस स्तर तक नही ला सकेगे, जिस स्तर तक कि अन्य देश अपनी नई-नई खोजों, नये-नये यंत्र-निर्माणो के द्वारा पहुँच गये है और आगे भी पहुँचेगे। यदि हम वैज्ञानिक जगत् मे दूसरो के समकक्ष बनना चाहते हैं, तो हमे स्वय नई-नई वैज्ञानिक खोजे और नये-नये प्रकार के यत्र-निर्माण करने होगे और यह सब हम पाश्चात्य जगत् की जूठन से नही कर पायेगे। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि हमारा प्रत्येक श्रमिक, प्रत्येक कृषक, प्रत्येक नर-नारी इस बात के लिए सचेष्ट हो जाय कि जो समस्याएँ उसके सामने आती है, उनके समाधान के लिए अहर्निश नई-नई युक्तियाँ सोचे, नये-नये यंत्र निकाले और इस प्रकार नये-नये वैज्ञानिक तथ्यो का पता चलाये। आवश्यकता नवनिर्माण अथवा उत्पत्ति की जननी है (Necessity is the mother of invention)। जब जीवन की चुनौती हम स्वीकार करते है, तभी हम नये सत्य खोज निकालते है, नये यत्र, नई युक्तियाँ बना पाते है। स्पष्ट है कि हम अपने देश के निन्यानवे प्रतिशत वासियो को यह अवसर इस कारण प्रदान नही कर पा रहे हैं कि हम अग्रेजी से चिपटे हुए है और अपने इस देश मे यह भ्रम फैला रखा है कि जिसे अग्रेजी नही आती, वह किसी प्रकार की वैज्ञानिक खोज या वैज्ञानिक निर्माण नही कर सकता। विदेशी भाषा के माध्यम द्वारा पढने के लिए अपने युवकों को मजबूर करके हमने उनकी प्रतिभा को तो कुण्ठित कर ही दिया है, उनको रट्टू मडूक बना ही दिया है, हमने साथ ही अपने देश के साधारण जन मे भी असहायता की विचारशून्यता की प्रवृत्ति पैदा कर दी है और ज्ञान के स्रोत हर प्रकार से अवरुद्ध कर दिये है। हमारा आर्थिक तत्र आज लँगड़ी चाल से चल रहा है, उसमे जनता के हृदय का स्पन्दन नही है, उसके पीछे जन-बल नही है, इस देश का महान् अपरिमित जन-बल नही है। सच तो यह है कि हमारा अग्रेजी वर्ग अपने स्वार्थवश यह भूल बैठा है कि इस देश की कितनी हानि इस अग्रेजी के कारण हो रही है। हम अनेक वर्षो तक अपनी राष्ट्रीय महासभा मे यह बात अपने संकल्पों, अपने प्रस्तावों द्वारा कहते रहे हैं कि अग्रेजी के कारण हमारे देश का महान् सांस्कृतिक, आर्थिक और नैतिक महापतन हुआ है। जब हम यह बात कहते थे, तो हमारा आशय इतना ही न था कि हमारा पतन इस कारण हुआ कि इस देश में अंग्रेज राजतत्र के प्रमुख पदो पर आसीन थे और वे उस तन्त्र को अपने स्वार्थ के लिए चलाते थे ; वरन् हमारे मन में यह बात भी थी कि इस पतन का कारण वह भाषा भी है, जिसके द्वारा वह अपना शासन इस देश मे चला रहे थे। अंग्रेजी भाषा के कारण हमारी अपने देश की भाषाएँ पंगु हो गई। उनको वह दाना-पानी न मिला, जो उनके स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक था। अग्रेजी के कारण हमारे जन-साधारण असहाय हो गये, क्योकि राज-दरबार में जाने पर वे शासकों से अपनी भाषा में न तो बात

कर सकते थे और न शासकों की भाषा समझ सकते थे ; अतः उन्हे अपने जीवन की गाढ़ी कमाई शासकों के दलालों को इसलिये देनी पडी कि वे दलाल इनकी बात शासकों तक पहुँचा सके और शासकों के आदेश उन्हे समझा सकें। अग्रेजी के कारण हमारे देश के शिल्पी, हमारे देश के महान् वास्तुकार दर-दर के भिखारी हो गये। जिन लोगों ने कोणार्क-जैसे मन्दिर का निर्माण किया था, उनके वैसे ही कुशल वशज केवल इसलिए रक हो गये कि वे अग्रेजी न जानते थे और अग्रेजी साम्राज्य के राज-दरबार में केवल वे ही कुशल वास्तुकार माने जाते थे, जिन्होने किसी अंग्रेजी वास्तु-विज्ञान के विद्यालय मे शिक्षा पाई थी। अग्रेजी ने हमे प्रगति-पथ पर तो क्या चलाया, हम से वह विज्ञान, वह शिल्प, वह कला भी बहुत कुछ छीन ली, जो हम अग्रेजी राज-काल के पूर्व अर्जित कर पाये थे। आज भी हमारी अंग्रेजी से कितनी हानि हो रही है, इस पर जरा विचार कीजिए। अग्रेजी के मोह के कारण हमारे सहस्रों विद्यार्थी इंग्लैड, अमरीका के विद्यालयों मे जाकर पढ़ते है और इस प्रकार देश का करोडों रुपया विदेशो मे खर्च हो रहा है। हमारे यहाँ आज अग्रेजी की पढ़ाई प्राथमिक विद्या-लयों मे भी अनिवार्य कर दी गई है। परिणामतः हमे अपनी प्राथमिक कक्षाओं के लिए अंग्रेजी की पुस्तिकाएँ विदेशो से आयात करने के लिए संभवतः करोडों रुपया खर्च करना पड़ रहा है। आखिर यह सब क्यो हो रहा है ? वह कौन-सी-बात है, जिसके लिए प्राथमिक कक्षाओं मे अँग्रेजी पढानी आवश्यक समझी जा रही है और उसकी पढ़ाई पर धनराशि व्यय की जा रही है ? आखिर प्राथमिक कक्षाओ मे इस अग्रेजी पढाई से हमारे ग्रामीण बालक को क्या लाभ होता है ? इसके अतिरिक्त हमारे देश मे अग्रेजी का उच्च स्तर बनाये रखने के लिए एक विशेष संस्था हैदराबाद मे कायम की गई है, जिस पर भी लाखो रुपया खर्च होगा। इस प्रकार जो धन सृजना-त्मक कार्यो और आर्थिक उत्पादन के लिए काम मे लाया जा सकता था, वह आज इस विफल प्रयास मे खर्च किया जा रहा है कि इस देश को अग्रेजी भाषा-भाषी बना दिया जाय और यहाँ की भाषाओं का अस्तित्व नष्ट हो जाय। कैसे मजे की बात है कि अग्रेजी की पढाई प्राथमिक कक्षाओं में तो अनिवार्य की जा रही है ; किन्तु जिस हिन्दी को हमारी प्रभुता-सम्पन्न सविधान-सभा ने सघ की भाषा विहित किया था, उसकी पढाई कई प्रदेशो मे अनिवार्य नही की गई है और यह पूरा प्रयास किया जा रहा है कि वह उन प्रदेशों मे प्रवेश न कर पाये। मैं समझता हूँ कि कुछ लोगो के मन में यह कल्पना वर्तमान है कि अंग्रेजी को प्राथमिक करके इस देश के वासियों को वैसा ही अग्रेजी का ज्ञान करा दिया जाय, जैसा कि अफ्रिका में नीग्रो लोगो को कराया गया और इस प्रकार उन्हे टूटी-फूटी अग्रेजी में अपनी बात व्यक्त करने के योग्य बनाकर कह दिया जाय कि इस देश के अधिकतर वासी अंग्रेजी भाषा-भाषी हैं और इसीलिए

अग्रेजी का ही यहाँ अक्षुण्ण साम्राज्य बना रहे। यद्यपि उनकी परिकल्पना कभी भी सफल नही हो सकती, किन्तु, फिर भी वे लोग मोहवश इस प्रकार का प्रयास कर रहे है और किसी-न-किसी बहाने से देश के धन, समय और शक्ति का अपव्यय इस लक्ष्य-पूर्ति के लिए कर रहे है। किन्तु, स्पष्ट है कि इस प्रकार हमारे देश की महान् हानि हो रही है। अग्रेजी के कारण हमारा नैतिक पतन भी कुछ कम नही हुआ है। हमारे देश मे भ्रष्टाचार और युवको मे अनुशासनहीनता और उद्दडता भी बहुत कुछ इसी कारण फैली है कि अग्रेजी देशों से आनेवाली कौमिक पढ-पढकर हमारे विद्यार्थी कुछ ऐसी बातो की ओर आकृष्ट होते है, जो हमारी मर्यादाओ, हमारी परम्पराओ, हमारे आदर्शो के सर्वथा प्रतिकूल है। और इस प्रकार अनुशासन का आधार अर्थात् आदर्शो मे आस्था और परम्पराओ के प्रति आदर नष्टप्राय होता जा रहा है। साथ ही अग्रेजी के मोह के कारण हमारे देश मे आज यह भावना घर करती जा रही है कि हमारी भाषाएँ पगु है और इस प्रकार हमारे देश मे ऐसे वर्ग की सृष्टि हो रही है, जो अपनी जाति, अपनी भाषा और अपने देश का भद्दा परिहास करने से नही चूकता। आजकल इस वर्ग के लोग यत्र-तत्र भारतीय भाषाओ और विशेषतः हिन्दी का मजाक उडाते दिखते है। अग्रेजी का एक शब्द लेकर वह उसके लिए कोई मनमाना हिन्दी का लम्वा-चौडा पर्याय देकर और उस पर्याय के प्रति परिहास कर यह सिद्ध करने का प्रयास करते है कि हिन्दी-जैसी उपहासास्पद भाषा कोई हो ही नही सकती। उन लोगों के मन मे संभवत. यह विचार उठता ही नही कि अपनी भाषा का परिहास अपनी जननी का परिहास है। भाषा हमारी माता के समान होती है, वह हमारे सांस्कृतिक शरीर की रचना करती है, उसका पोषण करती है, उसको अनुप्राणित करती है ; अत. अपनी भाषा पर कीचड उछालना अपनी माँ पर कीचड़ उछालना है। मै ससार भर में घूमा हूँ ; पर मुझे एक भी ऐसा देश और जाति नहीं दिखाई दी, जिसके लोग अपनी भाषा का स्वय अनादर तो क्या किसी अन्य से भी अनादर सहन कर सके ; किन्तु, इस अग्रेजी-मोह के कारण हमारे देश में ऐसे लोग हैं, जो इस बात से कभी नही हिचकिचाते कि वे अपनी भाषा का अनादर करें और उसकी खिल्ली उड़ाये। जब भी वे बोलते है, तभी वे अपनी भाषा का परिहास करते हैं और उसके लेखको और उपासकों की खिल्ली उडाते है। उन्हे सम्भवतः यह ख्याल नही आता कि ऐसा करके वे अपने मुख पर ही कलक-कालिमा पोत रहे है और यदि आता भी है तो संभवतः अपने अग्रेजी-प्रेम के कारण वे अपना काला मुँह करने के लिए भी तैयार है। इतना ही नही, इस अग्रेजी के कारण हमारा देश एक प्रकार से इग्लैड का अनुवाद बनाया जा रहा है। वैसा ही अनुवाद, जैसा कि शेक्सपियर ने अपने एक नाटक में अपने एक पात्र का करके दिखाया है। मैं समझता हूँ कि आप लोगो ने "मिड समर

नाइट्स ड्रीम" नाटक पढा होगा। इसमे एक पात्र बाटम नामी है, जिसके सिर पर एक मसखरे वनदेव ने गधे का सिर रख दिया था। उसे देखकर उसका मित्र, सहसा कह उठता है—"Bottom Thou art Translated."

हमारी भाषाओं पर अक्षमता का आरोप

हमारे ये अग्रेजी के उपासक यह माने बैठे है कि हमारे देश मे जो कुछ अच्छाई आनी है, वह सब अग्रेजी-साहित्य के अनुवाद से आनी है और इसीलिए वह समय-समय पर इस देश की भाषाओं के उपासको को चुनौती देते रहते है कि इस अग्रेजी शब्द का क्या देशी पर्याय है, या उस अग्रेजी शब्द का क्या देशी पर्याय है, मानो कि हमे अग्रेजी के पर्यायों के अतिरिक्त और कुछ काम रह नही गया है। वे वार-वार कहते है कि देशी भाषाओं मे यह क्षमता नही कि वे अग्रेजी शब्दों के विभिन्न ध्वनियो को व्यक्त कर सके और इसीलिए उनने यह क्षमता भी नही है कि वे अग्रेजी भाषा मे उपलब्ध अमूल्य वैज्ञानिक, दार्शनिक और अन्य प्रकार की निधियो को यथावत व्यक्त कर सकें। इस बात का वह ढिढोरा सारे जगत् मे पीटते है कि भारतीय भाषाएँ पगु है, अक्षम हैं और इसलिए भारत मे अंग्रेजी रखी जा रही है और रखी जायगी, पढ़ाई जा रही है और पढायी जायगी। कैसा पतन है यह हमारा कि हम यह मान बैठे कि हम मे अपनी कोई नैसर्गिक सृजन-शक्ति नही है, हम कोई मौलिक सृष्टि नही कर सकते, हम ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो में स्वय कुछ नही दे सकते। यह बात कि किसी विशेष अग्रेजी शब्द की सब ध्वनियों को हम किसी एक भारतीय शब्द से व्यक्त नहीं कर सकते। ऐसा नही है, जिससे भारतीय भाषाओं को किसी प्रकार की अक्षमता लेशमात्र सिद्ध होती हो। हर शब्द के पीछे उस जाति का इतिहास होता है, उस भूमि का वातावरण होता है, भौगोलिक परिस्थितियाँ होती हैं, जिस जाति और जिस देश में उस शब्द का प्रयोग होता रहा है। प्रत्येक अग्रेजी शब्द के पीछे इंग्लैंड की भौगोलिक परिस्थितियाँ, इगलिश जाति का इतिहास और वहाँ के सामाजिक सम्बन्ध और सस्थाएँ हैं ; अतः भारतीय भाषाओं का तो प्रश्न ही क्या, ससार की किन्ही अन्य भाषाओं मे भी ऐसा कोई शब्द नही मिल सकता, जो उनकी सब ध्वनियों को यथावत व्यक्त कर सके। इसी प्रकार भारतीय भाषाओ के शब्दो के लिए भी अग्रेजी मे कभी ऐसे पर्याय नही मिल सकते, जो उनके शुद्ध स्वरूप और विभिन्न ध्वनियो को यथावत व्यक्त कर सकें। मैं पूछता हूँ कि क्या कोई अंग्रेजी का महारथी मुझे जलेबी, बालूसाई गुलाबजामुन, दहीबडे, चाट जैसे हमारे साधारण शब्दों का ठीक-ठीक अंग्रेजी पर्याय बता सकता है ? तब क्या यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी भाषा पगु है, अक्षम है और उसमे विचारों की अभिव्यक्ति की शक्ति नही है। बात यह है कि जब भी एक

भाषा मे निहित विचारो को और भावनाओं को दूसरी भाषाओं मे अनूदित करने का अवसर आता है, तब यह सभव नही होता कि अनुवाद पूर्णतः मूल को ध्वनित कर सके। थोड़ा-बहुत अन्तर रह ही जाता है ; पर इस कारण किसी भाषा की अक्षमता की दुहाई नही पीटी जाने लगती। जो लोग माता के समान आदरणीय अपनी भाषा का उपहास और तिरस्कार करने पर तुले हुए है, वे भला यह कहने में क्या सकोच करेंगे कि हमारी भाषाएँ आधुनिक जगत् के योग्य नही है। इस सबध से मै एक बात और कहना चाहता हूँ। आजकल हिन्दी का तिरस्कार करने के लिए बराबर यह कहा जाता है कि जो हिन्दी काम मे लायी जा रही है, वह इतनी क्लिष्ट, इतनी दुरूह है और की जा रही है कि कोई उसे नही समझ सकता। मेरी यह मान्यता है कि यह बात उन लोगो द्वारा अधिकतर दुहराई जा रही है, जो हिन्दी के कभी समर्थक नही थे, जिन्होने जीवन मे हिन्दी कभी नही पढी, जो हिन्दी से आज भी लगभग अपरिचित है, और जो यह समझते है कि वही भाषा सरल है, जो उनकी अपनी समझ मे आ जाय ; अर्थात् जो स्वय अपने को ही इस बात का मापदड माने बैठे हैं कि कौन-सी भाषा दुरूह और कौन-सी भाषा सरल है। कम-से-कम जो लोग वैज्ञानिक दृष्टि से सब प्रश्नों पर विचार करने की दुहाई देते है, उन्हें यह तो सोचना चाहिए कि स्वय अपने को ही और अपने ज्ञान को ही किसी प्रश्न के निर्णय के लिए मापदड न मान लेना चाहिए। विज्ञान का यह पहला सिद्धांत है कि निजी व्यक्तित्व को ओझल करके प्रश्न पर विचार किया जाय , किन्तु हिन्दी का यह दुर्भाग्य है कि उसके विषय मे विचार करते समय कुछ ऐसे महान् व्यक्ति भी, जो सब दृष्टि से परम पूज्य और आदरणीय है, इस विचार की इस वैज्ञानिक प्रणाली को भूल जाते है। आज जो हिदी लिखी जा रही है, वह वहाँ तक बोधगम्य और जनप्रिय है, इस बात का निर्णय तो इसी से हो जाता है कि हिन्दी के समाचार-पत्र, हिन्दी पुस्तके, जनता में कितनी बिकती है, कितनी पढी जाती है। स्मरण रहे कि ये हिन्दी की पुस्तके या ये हिन्दी के समाचार-पत्र ऐसी परिस्थितियो मे जनता द्वारा गृहीत किये जा रहे है, जो हिन्दी और अन्य देशी भाषाओ के सर्वथा प्रतिकूल कर दी गई है। आज हिन्दी और देशी भाषाओं को वैसी कोई सुविधाएँ प्राप्त नही है, जैसी अग्रेजी के लिए उदारता से उपलब्ध की जा रही हैं। यह सभी को ज्ञात है और इस सम्बन्ध में लोक-सभा राज्य-सभा आदि में काफी प्रश्नोत्तर तथा भाषण हो चुके है कि हिन्दी एव अन्य भारतीय भाषाओं के पत्रो को सरकारी विज्ञापन उस प्रकार नही मिलते, जिस तरह अंग्रेजी पत्रों को मिलते है, चाहे इन भारतीय भाषाओं के पत्रों की ग्राहक संख्या अग्रेजी पत्रों से अधिक ही क्यों न हो। विज्ञापन देने के संबंध मे सरकार की इस नीति में तुरन्त परिवर्त्तन होना आवश्यक है। बिना इसके भारतीय भाषाओ के पत्रों का

स्तर ऊँचा नही उठ सकता और न उसका आर्थिक ढाचा सुधर सकता और न उसका सम्मान ही बढ सकता है। क्या सघ और क्या राज्य, सर्वत्र ही अग्रेजी पढे-लिखे को ही शासन मे पद मिलता है। जिसकी अग्रेजी अच्छी नही, वह सेवा-आयोगो द्वारा ली जानेवाली परीक्षाओं मे कदापि सफल नही हो सकता। इसका परिणाम यह हो रहा है कि जिन प्रदेशो मे शिक्षा का माध्यम हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाएँ कर दी गई है, वहाँ के विद्यार्थी इन परीक्षाओ मे अपने को पिछड़ा हुआ पाते हैं। इस प्रकार उन प्रदेशों को दड दिया जा रहा है, जिन्होंने भारतीय भाषाओं का आचल पकड़ा है। फिर इसमें क्या आश्चर्य की बात है कि अनेक माता-पिता, जो अपनी सतान का भविष्य उज्ज्वल करना चाहते हैं, इस बात की माँग करें कि अग्रेजी पुन: शिक्षा का माध्यम बनाई जाय और अग्रेजी का स्तर ऊँचा किया जाय। साथ ही इसमे क्या आश्चर्य की बात है कि हमारे देश का अभिजात वर्ग इस का प्रयास करे कि उस के पुत्र-पुत्रियाँ अंग्रेजी या पब्लिक स्कूलों में प्रवेश पा जायें। कुछ दिन हुए एक आग्ल भारतीय नेता ने दम्भ के साथ कहा था कि मंत्री लोग भी आग्ल भारतीय विद्यालयों मे अपने बालकों को प्रविष्ट करने के लिए लालायित रहते हैं; पर जब हिन्दी और अन्य देशी भाषाओं के गले मे फाँसी डाल दी गई है और उनका आसरा लेने वालों के लिए कोई भविष्य नही छोडा गया है, तब इस मे क्या आश्चर्य कि अपने बालकों को उच्च आसन पर बैठालने के इच्छुक माता-पिता इन आंग्ल भारतीय विद्यालयों मे उनका प्रवेश करना चाहे। इस पर भी देशी भाषाओं की पुस्तकें लाखो की संख्या में बिकती हैं और पढ़ी जाती हैं और पाठको को कभी यह नही लगता कि उनकी भाषा उनकी समझ मे नही आती।

अंग्रेजी भक्तों की वैज्ञानिक शब्दावली का फार्मूला

मजे की बात यह है कि लोग इस बात की दुहाई देते हैं कि हिन्दी अत्यन्त सरल बनाई जाय, उन्ही लोगो ने यह फैसला भी कर दिया है कि जहाँ तक वैज्ञानिक शब्दावली का प्रश्न है, वह पूरी-की-पूरी अंग्रेजी भाषा से ज्यो-की त्यो ले ली जाय। क्या यह बात उन्हें नही दिखती कि वह शब्दावली हमारे देशवासियो के लिए अत्यन्त दुरूह और क्लिष्ट होगी और यहाँ के ९९.९ प्रतिशत लोग उसे समझने में पूर्णत: असमर्थ होंगे। मैं इस संबध में आपके समक्ष कुछ उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। नीम जैसे सरल सुबोध और जनप्रिय शब्द के लिए अब हमारी वैज्ञानिक शब्दावली मे Azadirachta Indica लिखा जायगा। मैं नही जानता कि आपमे से कितने लोग और आप में से ही क्यो, इस देश मे से कितने लोग इस शब्द को समझ पायेंगे। मैं तो यह भी कहता हूँ कि अग्रेजी के हिमायतियो में से भी ९९ प्रतिशत इस को बोल न सकेंगे,

समझने का तो प्रश्न ही क्या। ऐसा ही दूसरा शब्द हल्दी है, जिसके लिए हमारी वैज्ञानिक शब्दावलियो मे लिखा जायगा Cırcuma Tonga धनिये के लिए लिखा जायगा Corıandrum Satıbum हीग के लिए लिखा जायगा Ferula Asa Foetıda इसी प्रकार सोने को Aurum कहा जायगा, लोहे को Eerrum और सीसे को Plumbum कहा जायगा। मैने कुछ अन्य शब्दो की एक सूची तैयार की है, जिसको यहाँ पढकर सुनाना आवश्यक नही है; किन्तु, इस भाषण की प्रतियो के साथ संलग्न है। इस सूची मे तो कुछ ही शब्द दिये हुए है; किन्तु ऐसे ही लाखो शब्द, जिन्हें कोई नही समझ सकता, हिन्दी पर लादने का निश्चय किया जा चुका है। मै यह पूछता हूँ कि सरलता का सिद्धान्त इस क्षेत्र मे क्यो लोप हो गया? यदि यह कहा जाय कि वैज्ञानिक क्षेत्र में यह आवश्यक है कि शब्द बड़े निश्चित और सधे हुए हो और इसलिए कठिन शब्दो से नही बचा जा सकता, तो फिर यह कहना कि अन्य क्षेत्रों मे सूक्ष्म विचार व्यक्त करने के लिए या भावो की चामत्कारिक अभिव्यक्तियो के लिए कठिन शब्द आवश्यक न होगे, ठीक नही है। शब्दो का चयन विषय के अनुसार होता है और एक विषय वालो को दूसरे विषय के शब्द दुरूह लगा करते है। इसका एक बडा उत्तम उदाहरण अभी हाल मे मिला है। संयुक्त राष्ट्र मे वक्ताओं के भाषणों का तात्कालिक अनुवाद करने के लिए अत्यन्त योग्य अनुवादक और कई भाषाओं के ज्ञाता नियुक्त है। कुछ दिन हुए, एक वैज्ञानिक के सम्मेलन में इन अनुवादको को वैज्ञानिको के भाषणो का अनुवाद करने का काम सौपा गया, किन्तु इनमे से एक भी उसे न कर पाया, क्योंकि जिन विषयों की चर्चा इस वैज्ञानिक सम्मेलन मे थी, उन विषयों से ये अनुवादक परिचित न थे, अतः यदि हिन्दी की, अन्य भारतीय भाषाओ के विभिन्न विषयों सम्बन्धी शब्दावली, हमारे कुछ राजनीतिकों की समझ में न आये, तो उन्हें यह न समझना चाहिए कि जान-बूझकर कोई इन भाषाओं को दुरूह बना रहा है और कम-से-कम उन लोगों को तो इस सम्बन्ध मे कुछ कहने का अधिकार हो ही नही सकता, जिन्होने भारतीय भाषाओं में से किसी को पढ़ने का कष्ट नहीं उठाया है; अतः मेरा विनम्र निवेदन है कि अंग्रेजी के भक्त हमारी भाषाओं का निरादर और अपमान करने से अब अलग रहे। यह हमारे देश का अपमान है, हमारी सास्कृतिक जननी का अपमान है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का आधार अंग्रेजी—एक भ्रमजाल

ऐसे ही खेद की यह बात है कि अग्रेजी के कारण हम में कुछ यह भावना पैदा हो गई है कि हम विदेशियों से कुछ हेय हैं और हम उनके समकक्ष तभी हो सकते हैं, जब हम उनकी भाषा में ही या अंग्रेजी के माध्यम द्वारा उनसे बात करें। मेरी

यह मान्यता है कि यही हेयता की भावना इस तर्क के पीछे है कि बाह्य जगत् से हमारा सपर्क केवल अग्रेजी के माध्यम द्वारा ही हो सकता है। कहा यह जाता है कि आज संसार के विभिन्न देश एक दूसरे के अत्यन्त निकट आ गये है और इसलिए प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति के लिए यह वांछनीय है कि सारे भू-मडल से अपना सपर्क बनाये रखे। और जहाँ तक हमारे देश का सम्बन्ध है, यह कहा जाता है कि यह सपर्क केवल अग्रेजी के माध्यम द्वारा ही रखा जा सकता है , पर प्रश्न यह होता है कि हमारे लिए ही यह क्यों आवश्यक है कि हमारा बाह्य जगत् से सम्पर्क अग्रेजी के माध्यम द्वारा ही हो ? यह बात फ्रास, रूस, दक्षिण अमेरिका, चीन आदि के लिए आवश्यक क्यों नही है ? क्या इन देशो का बाह्य जगत् से सम्पर्क नही है ? क्या ये लोग संयुक्त राज्य मे केवल अग्रेजी के द्वारा ही विचार-विनिमय करते हैं ? क्या यह सत्य नही है कि दक्षिणी अमरीका के राज्यो के प्रतिनिधि स्पेनिश भाषा के माध्यम द्वारा, रूस के प्रतिनिधि रूसी भाषा के द्वारा, फ्रांस के प्रतिनिधि फ्रांसीसी भाषा के द्वारा और चीन के प्रतिनिधि चीनी भाषा के द्वारा सब काम वहाँ करते है ? यदि वे लोग अपनी-अपनी भाषाओ के माध्यम द्वारा बाह्य जगत् से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं, तो फिर ऐसी कौन-सी बाधा है कि हम अपनी भाषा के माध्यम से बाह्य जगत् से सबध स्थापित न कर सके ? यह ठीक है कि आज सयुक्त राष्ट्र मे हिन्दी एक स्वीकृत भाषा नही हैं; किन्तु क्या इसका यह कारण नही है कि जिस समय सयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई थी, उस समय हम परतन्त्र थे और अंग्रेजी के दास थे, अतः वहाँ हमारे सबंध में यह विचार ही पैदा न हुआ कि हमारी भी कोई माँग हो सकती है। चीन ने अपनी गरिमा रखने के लिए अपनी भाषा को वहाँ मान्य कराया ; किन्तु क्या स्वतन्त्र होने के पश्चात् हमने एक दिन भी यह प्रयास किया कि हमारी भाषा उस सगठन की एक स्वीकृत भाषा हो जाय ? पर हम करते ही कैसे, जब हम अपने देश मे ही अपनी भाषा को राज्यासन पर बैठालने को उत्सुक नही हैं। परिणाम यह हुआ है, कि विदेशी हमको तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं और समझते हैं कि हम ऐसी बर्बर जाति के लोग हैं, जिनकी अपनी कोई भाषा नही। और जो अपने भूतपूर्व शासकों की भाषा के जूठन से काम चलाते हैं। कैसा पतन है यह उस देश का, जिसकी भाषा एक दिन सारे दक्षिण एशिया और अन्य देशो की विचार-विनिमय की भाषा थी। जिसमे अनेक देशो के विद्यार्थी उस भाषा का ज्ञान उपार्जित करने को आते थे और जो देश सारे सभ्य जगत् का सास्कृतिक केन्द्र था। कैसा पतन है कि आज उस देश के वासी इस बात मे अपना गौरव समझते है कि उनकी सन्तान केवल अग्रेजी बोल सकती है, इस देश की एक भाषा भी नही हमारी आत्मा का हनन इससे अधिक और क्या हो सकता है और यह सब इसलिए

हुआ है कि अग्रेजी हम पर लादी गई। राजनीति-शास्त्र मे एक सूत्र है कि यदि कोई जाति अन्य जाति पर अपना राज पूर्णत. जमाना चाहती है, तो उसे यह चाहिए कि वह विजित जाति की भाषा नष्ट कर दे। अग्रेजो ने इस प्रयोजन से हम पर अग्रेजी लादी थी। वे हमारी भारतीय आत्मा का हनन करना चाहते थे। वे इस में कुछ सीमा तक सफल हुए; किन्तु हमारी क्राति ने उन्हे पूर्णतः सफल न होने दिया। पर, आज हमारी आत्मा की इस शत्रु को हम पर क्यो लादा जा रहा है ?

अंग्रेजी भाषा से मुझे कोई द्वेष नहीं, पर...

मै यह स्पष्ट कर दूं कि मुझे अग्रेजी भाषा से कोई विद्वेष नही है; किन्तु जो कॉटा मेरे मन मे चुभता है, वह यह है कि इस भाषा को हमारे देश मे विषमता का, शोषण का, वर्ग-प्रभुत्व का साधन बनाया जा रहा है और इसका ऐसा प्रयोग किया जा रहा है कि जिससे हमारे देश की आत्मा का हनन हो। इस विषय मे मेरा वही मत है, जो अग्रेजों के सबध मे गाधीजी का था। वे सदा कहते थे कि उनकी अग्रेज जाति से शत्रुता नही, अग्रेजों से वे प्रेम करते है; परन्तु यह होते हुए भी अग्रेजी राज्य इस देश पर अस्वाभाविक है, इस देश की समस्त पीडाओ का कारण है; इसलिये उसे जाना ही चाहिए, अग्रेजी भाषा के संबध मे भी मेरी यही स्थिति है। यदि अग्रेजी से ऐसे ही बरता जाय, जैसा कि अन्य विदेशी भाषाओ से बरता जाता है, तो मैं उसका स्वागत करूँगा। न तो मुझे और न किसी हिन्दी या भारतीय भाषा-प्रेमी को इस बात मे कोई आपत्ति है, या हो सकती है कि जो लोग चाहे वे अग्रेजी सीखे, चाहे फ्रासीसी सीखे, चाहे चीनी सीखे। यदि कुछ लोग कई भाषाएँ सीखना चाहते हों, तो यह भी अच्छी बात होगी और इसके लिये प्रबन्ध होना चाहिये; किन्तु केवल इस दृष्टि से कि यहाँ अग्रेजी लादी जाय, यह दलील देना कि कई भाषाओं का ज्ञान उपार्जन हर विद्यार्थी के लिए वांछनीय है, कुछ उचित बात नही है। मैं यह पूछना चाहता हूँ कि जो लोग आज इस वांछनीयता की दुहाई देते है, उनमें से कितनो ने यह सोचा भी है, प्रयास करने का तो प्रश्न ही नही, कि वे इस देश की कुछ भाषाएँ सीख ले। मुझे तो ऐसा लगता है कि अग्रेजी के अतिरिक्त उन्होंने कोई और भाषा सीखने का विचार तक नही किया और यहाँ तक कि जो भाषा उन्हें अपनी माता से मिलती थी, उसको भी उन्होने भुला दिया और यह प्रयास किया कि उनकी सतान अग्रेजी के अतिरिक्त न और कुछ जाने न बोले। अंग्रेजी के मोह में वे इतने पागल हैं कि इस विचार से कि पाँच छै वर्ष की अवस्था से हमारे देश के बालको को वे अनिवार्यतः अंग्रेजी पढाने के लिए तर्क दे सके, उन्होने अंग्रेजी बोलने वाले देशों से विद्वान् बुला कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि छोटे बालकों

के लिए कई भाषाएँ सीख लेना बहुत आसान होता है और इसीलिए छोटी कक्षाओ में ही उन्होंने अग्रेजी की पढ़ाई करना आरम्भ कर दी है। पर प्रश्न यह होता है कि अंग्रेजी की ही क्यो ? क्या इस देश की कई भाषाओ का ज्ञान कराना ठीक नही ? पर ऐसी कोई योजना नही दिखाई पड़ती। कहा यह जाता है कि फ्रांस का राजकुल अपने मुकुट को आँखों पर धरे पहाड़ के कगार पर जा रहा था और खड्ड मे गिर पडा एव विनष्ट हो गया। कही इतिहास यह न कहे कि भारत मे अग्रेजी-वर्ग इस अंग्रेजी मुकुट को आँखों पर धरे इसी प्रकार खड्ड मे जा पड़ा। मेरा यह प्रयास है कि समय रहते हम सँभल जाये और इसी दृष्टि से मैं आप सब का आह्वान करता हूँ कि आप इस महाप्रयास मे लग जायँ कि इस देश की भाषाएँ शीघ्रातिशीघ्र राज्य-क्षेत्र मे अपना उचित स्थान पा जायँ।

सरकारी नौकरियों की परीक्षाओं का माध्यम

इस प्रयास के दो पहलू है। एक तो उन बाधाओं को हटाना, जो हमारी भाषाओं की प्रगति को अवरुद्ध कर रही है। मेरे विचार में सब से बड़ी बाधा तो यह है कि लोक-सेवा-आयोगों की परीक्षा का माध्यम आज सर्वत्र केवल अग्रेजी है—यह उन प्रदेशो के प्रति घोर अन्याय है, जिन्होंने देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बना लिया है। इन प्रदेशों के विद्यार्थी इन परीक्षाओं मे पिछड़े रह जाते हैं और इस-लिए इन प्रदेशों में भी यह प्रयास हो रहा है कि शिक्षा का माध्यम पुनः अग्रेजी हो जाय। कम-से-कम विश्वविद्यालयों के शिक्षक इसी आधार पर यह तर्क देते हैं कि उच्च शिक्षा का माध्यम अभी अंग्रेजी ही रहना चाहिए। भारत सरकार और राज्य सरकारो का यह कर्त्तव्य है कि वे देशी भाषाओं के प्रति इस घोर अन्याय को अविलम्ब बन्द कर दें ; इसलिए हिन्दी और अन्य देशी भाषाएँ इन परीक्षाओं का माध्यम स्वीकार की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि हमारे देश की भाषाएँ इन परीक्षाओं के लिए वैकल्पिक विषयों की सूची मे भी सम्मिलित की जाये। यह कितनी भारी विडम्बना है कि इन परीक्षाओं के लिए योरप की प्रादेशिक भाषाएँ ; अर्थात् फ्रेंच, जर्मन इटालियन इत्यादि-इत्यादि तो वैकल्पिक विषयों की सूची में हों; किन्तु इस देश की एक भी प्रादेशिक भाषा उस सूची में न हो। मानो हमारे राज-कर्मचारियों के लिए फ्रांसीसी या स्पेनिश सीखना तो वांछनीय है ; किन्तु इस देश की एक भी प्रादेशिक भाषा जानना या सीखना वांछनीय नही है। अंग्रेजों ने तो इस देश की भाषाओं को इन परीक्षाओ के लिए वैकल्पिक विषय इसलिए नही रक्खा था कि उनकी तुलना मे यहाँ परीक्षार्थी अधिक सफलता प्राप्त न कर पाये और योरप की प्रादेशिक भाषाओं को इसलिये

रखा था कि अग्रेजी परीक्षार्थी भारतीयों की अपेक्षा उन परीक्षाओ मे अधिक सख्या मे सफल हो सके, किन्तु आज किस सिद्धान्त पर भारतीय भाषाओ का यह बहिष्कार किया जा रहा है? इस बहिष्कार के कारण भी इन भाषाओ की प्रगति मे बाधा पड रही है और यह अब अविलम्ब दूर होना चाहिए।

उच्च न्यायालयों की भाषा

इसके अतिरिक्त आज हमारी भाषाओं के सामने यह बाधा भी है कि उनका प्रयोग उच्च न्यायालयो मे नही हो सकता। हमारा आज जो सविधान है, उसमे यह एक उपबन्ध है कि उच्च न्यायालयो और उच्चतम न्यायालय की भाषा केवल अग्रेजी होगी। परिणामतः वहाँ व्यवसाय करने वाले सब लोग अंग्रेजी का ही प्रयोग कर सकते है और करते है। स्वभावत. सारे विधि-व्यवसायियो का हित इसी मे हो जाता है कि वे देशी भाषाओ से कुछ विशेष वास्ता न रख कर अग्रेजी से ही अपना वास्ता रखे। विधि के क्षेत्र से हमारी भाषाओं के इस बहिष्कार के कारण भी वे पनप नही पाती। कैसी अजीब बात है कि जिस देश के निन्यानवे प्रतिशत लोग अग्रेजी का एक शब्द नही समझते, उनकी जीवन-व्यवस्था करने के लिए नियम और विधियाँ अग्रेजी में ही बनायी जायें। जो कारखानो में काम करते है और जिनके लिए अग्रेजी 'करिया अक्षर भैंस बराबर' है, उनके अधिकारो सबधी विधियाँ भी अग्रेजी मे बनायी जाये। परिणाम यह है कि विधियो से जो अधिकार हमारे जन-साधारण को मिले हुए है और जो दायित्व उन पर रखे हुए है, उनसे वे सर्वथा अपरिचित रह जाते है और कुछ मुट्ठी-भर अगरेजी पढ़े-लिखे हाथो की कठपुतली हो जाते है। इसके अतिरिक्त हमारी न्याय-प्रणाली इस अग्रेजी के कारण अत्यन्त खर्चीली और शिथिल गतिवाली हो गई है। जब कभी उच्च न्यायालय मे कोई अपील जाती है, तब इस कारण कि उच्च न्यायालय की भाषा अग्रेजी है, उस मुकद्दमे की पूरी कार्यवाही का उल्था अग्रेजी मे करना पडता है। इस उल्थे को पेपर बुक कहा जाता है और इस के तैयार करने में पर्याप्त धन और समय का खर्च होता है। कभी तो पेपर बुक पर हजारो रुपया खर्च बैठता है और वर्षो मे वह तैयार होता है; किन्तु कैसे आश्चर्य की बात है कि न्याय-प्रणाली के इस दोष के प्रति विधि-आयोग ने सकेत तक नही किया है; क्योंकि अग्रेजी का चश्मा उसकी आँखो पर भी चढ़ा हुआ था और वह अग्रेजी से होने वाली इस हानि को देख ही नही सकता था। मैं समझता हूँ कि हमारी भाषाओ की इस बाधा को भी तुरन्त दूर कर देना चाहिए और इस बात की अनुमति चाहिए कि उच्च न्यायालयो में और उच्चतम न्यायालय मे देशी भाषाओ या हिन्दी का प्रयोग किया जा सके।

हमारी सविधान-सभा ने सर्वमत से हिन्दी को इस देश की राजभाषा स्वीकृत किया था। आज यत्र-तत्र इतर भाषा-भाषी कतिपय सज्जन हिन्दी का विरोध करते सुने जाते हैं। एक तो वे दक्षिण के चार राज्यो मे से केवल तमिल भाषा-भाषी मद्रास के महानुभाव है और कुछ बंगाल के; परन्तु यह विरोध रोटियों के कारण है और जिस मद्रास राज्य में यह विरोध दिख रहा है, वहाँ इस विरोध के साथ ही हिन्दी सीखने वालो की संख्या बढी है। शेष भारत के किसी भी भाग मे हिन्दी का कोई विरोध नही है। मैने समूचे भारत के न जाने कितने दौरे किये है और करता भी रहता हूँ और यह बात मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कहता हूँ।

साहित्य-सर्जन

दूसरा हमारे प्रयास का पहलू सर्जनात्मक हो—मै इस संस्था को बधाई देता हूँ कि इसने इसके बारे में स्तुत्य कार्य किया है, किन्तु हम अब तक के कार्य से सतोष करके नही बैठ सकते। हमे इस देश की आत्मा की अभिव्यक्ति, अपने भाषाओ के माध्यम द्वारा ही हर प्रकार से करनी है। हमारे साहित्यकारों का यह धर्म है कि वे अपनी जीवनानुभूति अपनी भाषाओ के सुन्दरतम शब्दो मे अभिव्यक्त करके इन भाषाओं के साहित्य-भंडार को परिपूर्ण कर दें। हमारा देश आज एक महत् यात्रा पर चल पड़ा है—ऐसी यात्रा पर, जो उस महामन्दिर मे उपासना के लिए है, जिस के प्रसाद से हमारे देश के प्रत्येक नर-नारी का जीवन सब दृष्टियो से सम्पन्न, समृद्ध और आनन्दमय हो जायगा।

आह्वान

पिछली शताब्दियो में अनेक कारणों से हमारा जीवन गतिहीन हो गया था और इस कारण हम अन्य जातियों से बहुत पिछड़ गये। हमें अब बड़े पग बढ़ा कर उनके समकक्ष आ जाना है और यह हम तब ही कर पायेंगे, जब हमारे प्रत्येक नागरिक के हृदय में वह ज्योति जग जाये कि उसके ही प्रयास पर उसका और हम सब का भविष्य निर्भर करता है। हमें उसे गतिमान बना देना है, गाँव-गाँव और नगर-नगर मे हमें यह नवसदेश पहुँचा देना है। यह काम हमारे भाषा के साहित्यिको का है, कवियों का है, कलाकारों का है और साथ ही हमारे दार्शनिको और वैज्ञानिको का है। मैं आपको आह्वान करता हूँ कि आप इस ज्योतिशिखा को लेकर, इस भाषा की अपार शक्ति को लेकर, ग्राम-ग्राम और नगर नगर मे अलख जगाये। जन-मानस को आंदोलित कर दे, जिससे कि वे सब बाधाओ को हटा कर सब विदेशी जंजीरों को तोड़ कर अपना भाग्य-निर्माण करने के लिए और संसार की जातियों मे अपना उचित स्थान प्राप्त करने के लिए द्रुतगति से अग्रसर हो सकें।

अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, छत्तीसवां अधिवेशन, मेरठ

अध्यक्षीय भाषण

८ दिसम्बर १९४८

स्वागताध्यक्ष महोदय, प्रतिनिधिगण, बहनो और भाइयो !

जिस स्थान पर आप परम पूज्य महात्मा गांधी, महामना मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद और अनेक दिग्गज विद्वान् तथा महान् हिन्दी प्रेमियों को आसीन कर चुके हैं, उस को आज मुझे देकर आपने अपनी महान् उदारता और परम अनुकम्पा का ही परिचय दिया है। इस प्रकार आपने अपनी गुण-ग्राहकता सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, यह मैं नही कह सकता, क्योंकि यदि आपने यह किया होता, तब तो यहा कोई अन्य व्यक्ति ही विराजमान होता । आपकी इस उदारता और अनुकम्पा के बदले में रूखे-सूखे धन्यवाद के अतिरिक्त मेरे पास देने को क्या रखा है ? ईश्वर से मैं यही प्रार्थना करता हूं कि जिस विश्वास का आपने मुझे पात्र समझा है, उसके योग्य मैं हो सकू। अतएव, अब मैं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्राण श्रद्धेय श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन को प्रणाम कर इस कार्य के संचालन का प्रयत्न करता हू।

श्रद्धांजलि

महात्मा गांधी के निधन के पश्चात् इस सम्मेलन का यह प्रथम अधिवेशन हो रहा है। ससार में ऐसे महान् पुरुष शताब्दियों मे आते हैं। इस देश मे गौतमबुद्ध और ससार मे ईसा के उपरान्त किसी ऐसे महापुरुष का जन्म नही हुआ। इस देश के जीवन का एक भी ऐसा क्षेत्र नहीं, जिसे महात्माजी ने अपने व्यक्तित्व और कार्य से प्रभावित न किया हो। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का भी गांधीजी से निकट का सम्बन्ध रहा है। उधर इन्होंने अपना सम्बन्ध सम्मेलन से अवश्य तोड लिया था, परन्तु सम्मेलन को आज जो महत्व प्राप्त है, उस में गान्धीजी का कितना बड़ा हाथ था, यह किसी भी सम्मेलन-प्रेमी से छिपा नही है। हम उन्हें श्रद्धाजलि अर्पित करते

हुए उन के इस वाक्य का स्मरण करते है—"भाई, मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है। पूरी आजादी तो हमें अंग्रेजी की गुलामी छोड़ देने पर ही मिलेगी।"

हमारा ध्यान आज उन हिन्दी-प्रेमियो की ओर भी जाये बिना नही रहता, जिन से हमारा इस वर्ष वियोग हुआ है। उन मे है—

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान और बाबू रामधारीप्रसाद।

सम्मेलन का कार्य

देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् हमारे इस सम्मेलन ने भी एक नये युग मे प्रवेश किया है। सम्मेलन ने अब तक जो कार्य किया है, उस का सिहावलोकन करना यहा उपयुक्त होगा। यह सिंहावलोकन तब तक सुचारु रूप से नही किया जा सकता, जब तक कि सम्मेलन की स्थापना से पूर्व हिन्दी की दशा पर थोडा-सा विचार न कर लिया जाय।

सम्मेलन की स्थापना सन् १९१० मे हुई। इसके पहले काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अतिरिक्त कदाचित् कोई ऐसी सस्था हिन्दी के क्षेत्र मे काम नही करती थी, जो उल्लेखनीय हो। जिन क्षेत्रो मे हिन्दी लोगों की मातृभाषा थी, वहा सन् १९१० मे प्राथमिक शिक्षा हिन्दी में दी जाती थी। कालेजों की बात तो अलग रही, हाई स्कूलो में भी शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो सकती है, इस तक की कल्पना नही की जा सकती थी। पुराने काव्य-साहित्य को छोड़कर हिन्दी में बहुत थोड़े साहित्य का निर्माण हुआ था। उच्च कक्षाओं मे पढ़ाने के लिए न उसमे ग्रन्थ उपलब्ध थे और न शिक्षक ही। विदेशी राज्य था और विदेशी भाषा मे हमारे देश की सारी शिक्षा और परीक्षाएँ होनी थी। हां, यह अवश्य था कि देश के अधिक निवासियों की मातृभाषा हिन्दी थी और जिन की मातृभाषा हिन्दी न थी, वे भी (दक्षिण भारत के निवासियों को छोड़कर) हिन्दी समझ व बोल लेते थे। इस परिस्थिति मे सम्मेलन ने अपना कार्य आरम्भ किया। सन् १९१४ में उस ने अपनी विशिष्ट परीक्षाएं और उन के लिए पाठयक्रम निर्धारित किये। इसके लिए पाठ्य पुस्तकें बनने लगी। जो व्यक्ति पहले विद्यार्थियों के रूप में आये, वे ही आगे चलकर शिक्षक बने। पहले हिन्दी-क्षेत्र में ये परीक्षाए जनप्रिय हुई, और फिर अहिन्दी प्रान्तो में; यहां तक कि दक्षिण भारत तक पहुच गयी। आज इस देश का एक भी ऐसा क्षेत्र नही, जहा सम्मेलन के 'विशारद' और 'साहित्यरत्न' न हों।

ग्राम-उत्थान कार्यो में जिस प्रकार सरकार गाधीजी का अनुसरण करती थी और गांधीजी की ग्राम-सुधार की किसी योजना के बनने पर वह अपनी योजना

बना, उससे होड करने का प्रयत्न करती थी, उसी प्रकार हिन्दी मे भी उच्च शिक्षा देने के लिए पाठ्यक्रम सरकार ने सम्मेलन की परीक्षाओ के पश्चात् बनाये। विश्वविद्यालयो मे हिन्दी की प्रतिष्ठा का आरम्भ यथार्थ मे सम्मेलन की इन परीक्षाओ द्वारा ही हुआ।

शिक्षा और परीक्षाओं के अतिरिक्त हिन्दी के प्रति अहिन्दी प्रान्तो के विद्वानो और जनता की सहानुभूति प्राप्त करने का भी महान् कार्य सम्मेलन ने ही किया। आज हिन्दी का राष्ट्रभाषा पद पर आसीन होना, एक स्वाभाविक-सी बात लगती है। इस का श्रेय सम्मेलन के प्रचार-कार्य को नही, तो और किसे है? हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए जिन भावनाओं और जिन परिस्थितियों की आवश्यकता थी, उन का जागरण और निर्माण सम्मेलन ने ही किया। बिना सम्मेलन के इन प्रयत्नों के हिन्दी देश की राष्ट्रभाषा और देवनागरी राष्ट्रलिपि हो सकती है, यह सोचा तक नही जा सकता था।

गत तीस वर्षों में हिन्दी में साहित्य-निर्माण की जो प्रगति रही, उस मे भी सम्मेलन का कम हाथ नही रहा। सम्मेलन ने ही हिन्दी के स्तर को ऊँचा उठाया है। सम्मेलन की ओर से जो भिन्न-भिन्न पुरस्कार लेखको को दिये जाते है, उन से साहित्य-सृजन में कम प्रोत्साहन नही मिलता। फिर सम्मेलन की ओर से भी अनेक महत्वपूर्ण और सुन्दर ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। सम्मेलन अधिक ग्रन्थो का प्रकाशन इसलिए न कर सका कि वह एक तो अन्य प्रकाशको के साथ इस दिशा मे प्रतिद्वन्द्विता करना नही चाहता था, वह केवल ऐसे शास्त्रीय ग्रथ ही प्रकाशित करने का इच्छुक था, जिन्हे दूसरे प्रकाशक प्रकाशित न कर सकते थे। दूसरे उसे मुद्रण आदि के सम्बन्ध में भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडा। अब उसने अपने प्रेस का प्रबन्ध कर लिया है, परन्तु अब भी वह अन्य प्रकाशकों से प्रतिद्वन्द्विता न कर ऐसे ही शास्त्रीय ग्रन्थो को प्रकाशित करेगा, जिन्हें अन्य प्रकाशक प्रकाशित करने में असमर्थ रहेंगे।

जिस सग्रहालय की सम्मेलन ने स्थापना की है, वह भी कम महत्वपूर्ण नही।

सबसे बडी बात यह है कि अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और उसकी विविध प्रातीय शाखा-प्रशाखाओं का जैसा देश-व्यापी सगठन है, वैसा हिन्दी में न तो सम्मेलन की स्थापना से पूर्व कोई सगठन था और न आज है। यह भी स्मरण रहे कि सम्मेलन ने सारा कार्य प्रतिकूल परिस्थितियो मे किया है—इसे राजाश्रय प्राप्त न था, वरन् विदेशी सरकार ने सदा उस के कार्यों मे बाधक होने का प्रयत्न किया। उस का सारा कार्य विदेशी राज्य के समय हुआ, जब अग्रेजी का दौर-दौरा था।

राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि

देश के स्वतन्त्र होने तक स्वतन्त्रता हमारा प्रथम लक्ष्य था। इस कार्य के सामने अन्य सारे कार्य गौण थे। देश के स्वतन्त्र होते ही स्वतन्त्र देश के विधान बनाने का प्रश्न हमारे सामने आया। विधान-परिषद के निर्वाचन के पश्चात् विधान किस भाषा मे बने तथा किस लिपि मे लिखा जाय देश की राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि कौन-सी हो, ये प्रश्न किसी-न-किसी रूप मे विधान-परिषद् के सामने आते रहे हैं। यद्यपि इन का अन्तिम निर्णय अब तक नही हुआ ; पर मै यह मानता हू कि बड़े-बडे विरोधों के रहते हुए भी हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा और देवनागरी ही राष्ट्रलिपि घोषित होगी। एक बात और हो सकती है कि नागरी मे लिखी जाने वाली 'भारती' हमारे देश की राष्ट्रभाषा निश्चित की जाय। यदि यह होता है, तो मैं इस का भी स्वागत करता हू, क्योकि भारत हमारे देश का प्राचीन नाम है। हिन्द और हिन्दुस्तान नाम तो उसे पीछे से मिला। हिन्द नाम के कारण भाषा का नाम भी हिन्दी हो गया। देश का नाम भारत और भारत देश की भाषा का नाम भारती, यह हमारी परम्परा और संस्कृति के अधिक अनुरूप है। हा, तो मै आप सेकहना चाहता हूँ कि राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि का अब तक चाहे निर्णय न हुआ हो, पर हिन्दी या भारती ही हमारी राष्ट्रभाषा और नागरी ही राष्ट्रलिपि होगी। यदि और कुछ हुआ तो वह स्वाभाविक न होकर अस्वाभाविक होगा और कोई अस्वाभाविक बात स्थायी नही हो सकती।

अग्रेजी इस देश की राष्ट्र-भाषा हो नही सकती। लगभग दो सौ वर्षो के अग्रेजी राज्य के उपरान्त इस देश के कितने प्रतिशत लोग अग्रेजी जानते है? हिन्दुस्तानी कोई भाषा है ही नही। उस का न कोई व्याकरण है, न साहित्य। जिस भाषा का अस्तित्व ही नहीं, वह राष्ट्रभाषा कैसे बनायी जा सकती? अग्रेजी की 'कनसाइज आक्सफर्ड डिक्शनरी' मे हिन्दुस्तानी को मुगल विजेताओं की भाषा कहा है। हिन्दुस्तानी कही जाने वाली भाषा मे बाजारो में बोले जाने वाले शब्दों के अतिरिक्त वैज्ञानिक और शास्त्रीय शब्दों का न निर्माण हुआ है और न हो सकता है। साधारण पढाई लिखाई भी या तो अंग्रेजी भाषा मे हो सकती है या हिन्दी मे या उर्दू में; हिन्दुस्तानी मे नही। कुछ अकगणित, भूगोल और रेखागणित के शब्दों को ही लीजिए—

अंग्रेजी	हिन्दी	उर्दू
	अङ्कगणित	
Multiplicand	गुण्य	मज़रब
Multiplier	गुणक	मज़रबफी
Product	गुणनफल	हासिल-इ-जरब
Divisor	भाजक	मकसूम इलाह
Dividend	भाज्य	मकसूम
Quotient	भजनफल	खरफि-इ-किस्वत
L. C. M.	लघुत्तम समापवर्त्य	जुआजाफ इ-अकल
Decimal	दशमलव	आशारिया
	भूगोल	
North, South	उत्तर, दक्षिण	शुमाल, जुनूब
East, West	पूर्व, पश्चिम	मशरिक, मगरिब
Isthumus	डमरूमध्य	खाकनाय
Continent	महाद्वीप	बर्रेआजम
Archipelago	द्वीपसमुदाय	मजमूल उल जज़ायर
	रेखागणित	
Radius	त्रिज्या	निस्फकुतुर
Equilateral triangle	समत्रिबाहु त्रिभुज	मुसल्लस मुसाविलुल जिल
Diagonal	कर्ण	वतर
Right-angled Isosceles triangle	समकोण समद्विबाहु त्रिभुज	मुसल्लस मुसाविउस्सा कैन काय मुज्जाविया

झगडा हिन्दुस्तानी नाम का नही है, झगड़ा है हिन्दुस्तानी नाम मे, जो अर्थ निहित हो गया है उस का। हिन्दुस्तानी का अर्थ वह भाषा है, जिस मे इतने प्रतिशत शब्द संस्कृत, इतने फारसी, इतने अरबी के हों, फिर वह नागरी और अरबी लिपियो मे लिखी जाने वाली भाषा है। कुछ महानुभावो का मत है कि भाषा का नाम हिन्दुस्तानी रखा जाय, पर वह एक ही लिपि नागरी में लिखी जाय; किन्तु भाषा केवल लिखने की न होकर बोलने की भी वस्तु है। यदि नागरी लिपि मे

लिखी जाने वाली हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा घोषित हो, तो भी उस मे कितने प्रतिशत शब्द किस भाषा के रहेगे, यह प्रश्न उठेगा और रेडियो आदि मे जहां भाषा लिखी न जाकर केवल बोली जाती है, सदा एक झगडा मचा रहेगा जैसा आज मचा है।

जो लोग हिन्दुस्तानी का विरोध करते है, वे किसी साम्प्रदायिक भावना से ऐसा करते है, यह मै नही मानता, वरन् मै तो यह कहता हू कि हिन्दुस्तानी का समर्थन न करने वाले उस का समर्थन साम्प्रदायिकता की भावना से करते है। जो देश मे एक संस्कृति चाहते है, वे भला दो लिपियों में लिखी जाने वाली भाषा का समर्थन कैसे करेगे ?

हिन्दी का राष्ट्रभाषा होना इसलिए स्वाभाविक नही है कि वह अन्य प्रान्तीय भाषाओ से श्रेष्ठ है। हम अन्य प्रान्तीय भाषाओं को नीची और हिन्दी को उन से ऊँची नही मानते। हिन्दी का राष्ट्रभाषा होना इसलिए स्वाभाविक है कि कुमायू से लेकर बस्तर तक और जैसलमेर से बिहार के पूर्वीय छोर के अन्तिम ग्राम तक हिन्दी ही लोगो की भाषा है। उसे इस देश की तीस करोड मे से अठारह करोड़ जनता बोलती और बाइस करोड़ समझती है। संयुक्त प्रान्त, बिहार, महाकोशल, राजस्थान, मध्यभारत, विन्ध्य-प्रदेश, पूर्वी पजाब, हिमांचल प्रदेश की भाषा हिन्दी है। दक्षिण भारत मे भी उस का प्रचार अत्यन्त शीघ्रता से हो रहा है।

राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाएँ

राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरी हो जाने का कोई यह अर्थ न समझे कि हम भिन्न-भिन्न प्रांतो की प्रांतीय भाषाओ का गला घोटना चाहते है। विदेशी राज्य ने विदेशी भाषा को हमारे देश पर लादकर, उसी को हमारी शिक्षा का माध्यम, हमारी धारा-सभाओं और न्यायालयों की भाषा बनाकर, हम पर जो घोर अत्याचार किया था, ऐसी कोई बात करने की कल्पना तक हम नही कर सकते। जिन प्रांतों की भाषा हिन्दी नही है ; जैसे—बगाल, आसाम, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात, तमिल, आन्ध्र, कर्नाटक, मलायलम आदि, उन प्रांतों में हम शिक्षा का माध्यम हिन्दी भाषा को नही बनाना चाहते ; न वहा की धारा-सभाओं और न्यायालयों मे हम हिन्दी को चलाना चाहते है। अहिन्दी प्रांतों की शिक्षा का माध्यम वहा की धारा-सभाओ और न्यायालयों की भाषा प्रान्तीय भाषा ही रहे। हा, केन्द्रीय तथा अन्तर्प्रान्तीय सारे कार्य राष्ट्रभाषा हिन्दी मे ही होने चाहिए और केन्द्रीय तथा अन्तर्प्रान्तीय सारे कार्य सुचारु रूप से चल सकें, इस के लिए समूचे भारत मे राष्ट्रभाषा की शिक्षा भी अनिवार्य होनी चाहिए। हम इस बात के लिए भी प्रस्तुत हैं कि दक्षिण भारत तथा अहिन्दी प्रातों के अपने भाइयों के सुविधार्थ

केन्द्र मे भी हिन्दी के साथ-साथ कुछ समय के लिए अग्रेजी का अस्तित्व रख लिया जाय। देश की सर्वांगीण उन्नति के लिए राष्ट्रभाषा और प्रातीय भाषाओ दोनो का समान महत्व है, और दोनो की समान उन्नति आवश्यक है।

राष्ट्रभाषा और अंग्रेजी

अग्रेजी भाषा से भी हमारी कोई शत्रुता नही। देश के बाहर की बातों के ज्ञान तथा अन्तर्राष्ट्रीय कार्यो के लिए हमे अग्रेजी का सहारा लेना ही होगा। इन कार्यो के लिए अग्रेजी के अतिरिक्त हम और किसी भाषा का आश्रय नही ले सकते।

राष्ट्रभाषा और उर्दू

उर्दू और हिन्दी का कैसा सम्बन्ध रहेगा, इस पर भी कुछ कह देना आवश्यक जान पडता है। उर्दू भाषा से भी हमारा कोई द्वेष नही। हम उर्दू भाषा और उस के साहित्य का सम्मान करते है। वह इस देश मे जन्मी और यही पनपी है। हम तो उसे हिन्दी की ही एक शैली मानते है , परन्तु मैं यह कहे विना नही रह सकता कि यह जन्म लेने और पनपने वाली उर्दू भाषा का साहित्य, मसलमानो को एक पृथक् समुदाय बनाये रखने मे सहायता देता रहा है। उर्दू के साहित्य मे हिमालय का वर्णन न होकर कोहकाफ का वर्णन होता है। वह साहित्य कोयल के स्थान पर बुलबुल को ही महत्त्व देता है। उस के वीर भीम, अर्जुन न होकर रुस्तम आदि हैं। वह दधीचि और शिवि को छोड़ हातिम की उदारता का वर्णन करता है। हमारे मुसलमान भाइयो के मन मे पार्थक्य की भावना है। भारतीय सस्कृति से अलग अपनी सस्कृति को रखने के विचार है। उस मे सदा उर्दू और उसके साहित्य ने सहायता पहुचायी है। पार्थक्य की इस भावना ने ही द्विराष्ट्र सिद्धान्त को जन्म दिया, जिस के कारण देश का विभाजन हो गया। भारत मे रहने वाले मुसलमान भाई यदि अपने को अन्य भारतीयो से अलग मानेगे, तो इस देश पर भविष्य मे अनेक ऐसी आपत्तिया आ सकती है, जिन की आज हम कल्पना भी नही कर सकते। हिन्दू-धर्म ही सारे भारतीयो का धर्म नही है। दो धर्मो को मानने वाले भी एक कुटुम्ब मे रहते है। पजाव मे एक ही कुटुम्ब मे हिन्दू और सिख रहते है। राजस्थान मे एक ही कुटुम्ब मे वैष्णव और जैन रहते है। क्या ऐसी स्थिति नही आ सकती, जब एक ही कुटुम्ब मे एक व्यक्ति हिन्दू और दूसरा मुसलमान रहे ? हमारे पडोसी देश चीन और रूस मे जव यह वात है, तव भारत मे क्यो नही हो सकती ? चीन और रूस मे बौद्ध, ईसाई तथा मुसलमानो के धर्म पृथक्-पथक् होने पर भी उन की सस्कृति पृथक्-पृथक् नही है। उन के नामो तक से इस बात का पता नही लगता

कि कौन किस धर्म को मानता है। हम चाहते है कि पार्थक्य की इस भावना को त्याग, मुसलमान भारतीय सस्कृति को अपनाकर इस देश के अन्य निवासियो मे घुल-मिल जाये। वे भी हिंदी भाषा को अपना ले। महाराष्ट्र, बगाल, आसाम, उडीसा, गुजरात, तमिल, आंध्र, कर्नाटक, मलयालम मे रहने वाले मुसलमान इन प्रातो की भाषाओ को ही बोलते और लिखते है। कुछ दिन पहले जब साम्प्रदायिकता का ऐसा दौर-दौरा नही था, तब इन प्रातो के मुसलमानो मे उर्दू का प्रचार न था, और हमारे हिंदी-भाषी मध्यप्रात के मुसलमान हिंदी मे ही सारे कार्य करते थे। अधिकांश उर्दू जानते तक न थे। प्राचीन समय मे अनेक मुसलमानों ने हिंदी भाषा को अपनाकर, उस मे उत्तम-से-उत्तम रचनाए की है। कबीर, जायसी, रहीम, रसखान आदि का नाम हिंदी के इतिहास मे सदा अमर रहेगा।

गत कुछ वर्षो से साम्प्रदायिकता के कारण उर्दू भाषा का एक विशेष प्रकार से प्रसार किया जा रहा है, जैसा मैने अभी कहा। हम उर्दू के विरोधी नही है, पर जिस पार्थक्य की भावना से उर्दू का यह प्रसार हो रहा है, उस का कम-से-कम मैं घोर विरोधी हूँ।

राष्ट्रभाषा का भावी स्वरूप

भाषा के नाम और लिपि के प्रश्न के साथ ही हमारी राष्ट्रभाषा कैसी हो, यह प्रश्न हमारे समाने है। हमारी भाषा ऐसी होनी चाहिए, जो सरल-से-सरल हो, जिसे सहज मे सब लोग समझ सकें ; परन्तु जहां एक ओर भाषा की सरलता की ओर हमारा ध्यान रहना चाहिए, वहां दूसरी ओर हमे इस बात पर भी ध्यान रखना होगा कि हमारी भाषा में उपयुक्त शब्दों का प्रयोग हो, जो सूक्ष्म अर्थ का भी यथातथ्य बोध करा सकें। वैज्ञानिक और शास्त्रीय ग्रन्थो अथवा लेखों की भाषा बहुत सरल नही हो सकती। ललित साहित्य मे भी कहानी, उपन्यास, नाटक की भाषा जितनी सरल हो सकती है, उतनी कविता की नही। यदि वैज्ञानिक और शास्त्रीय भाषा को हम सरल बनाने का प्रयत्न करेंगे, तो भाषा में यथातथ्य बोध की शक्ति नही आ सकेगी। और यदि कविता मे भी अत्यधिक सरलता लायी जायगी, तो भाषा-सौष्ठव नष्ट हो जायगा। हमारी भाषा मे जो शब्द बाहरी भाषाओं के आ गये है, उन का बहिष्कार हमे नही करना है, वरन् हमे तो अन्य भाषाओं के और शब्द भी ग्रहण करने के लिए तैयार रहना चाहिए। आज जो अग्रजी भाषा इतनी उन्नत है, उस का प्रधान कारण यही है कि उसने अपने शब्द-कोश को अन्य भाषाओ के शब्दों से समृद्ध किया है। नारमन लोगो की जीन

के समय अंग्रेजी भाषा की क्या स्थिति थी और धीरे-धीरे उस की श्रीवृद्धि कैसे हुई, इसे हम देखे। हाल ही मे आयरलैड मे गेलिक भाषा का किस प्रकार उत्थान हुआ, इस का अवलोकन करे ; परन्तु इसी के साथ अपनी भाषा के उद्गम और गठन को देखते हुए हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि हम नये शब्दो के निर्माण मे प्रधानतया सस्कृत से ही सहायता ले सकते है। तमिल के सदृश एक दो प्रातीय भाषाओं को छोड़ शेष हमारी सभी प्रान्तीय भाषाओ की जननी सस्कृत ही है। संस्कृत से शब्द लेने पर हम अन्य प्रान्तीय भाषाओ के भी अधिक समीप रह सकेंगे ।

सस्कृत की शब्द-सरिता भारतवर्ष की सभी साहित्यिक भाषाओं का पोषण करती है। उस की उपमाओ, उत्प्रेक्षाओ, अभिव्यजनाओ और सूक्तियों से भारत की प्रत्येक भाषा के ग्रन्थ ओतप्रोत है। वही भारत की सांस्कृतिक एकता की प्रतीक है। उस के शब्द प्रत्येक भाषा में इतने प्राचुर्य से प्रयुक्त हुए है कि कभी-कभी दो भारतीय भाषाओ मे भेद करना कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए विश्व-विख्यात कवि-सम्राट् श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की "मानसी" नामक पुस्तक से "सूर-दासेर प्रार्थना" शीर्षक कविता लीजिए—

अपार भुवन, उदार गगन, श्यामल काननतल,
वसन्त अति मुग्ध मूरति, स्वच्छ नदीर जल,
विविधवरण सान्ध्यनीरद ग्रहतारामयी, निशि,
विचित्र शोभा शस्य क्षेत्र प्रसारित दूर दिशि।
सुनील गगने घनतर नील अति, दूर गिरिमाला,
तारि परपारे रविर उदय कनक-किरण ज्वाला।
चकित-तड़ित सघन वरषा पूर्ण इन्द्रधनु,
शरत् आकाशे असीम विकास ज्योत्स्ना शुभ्रतनु।

इसे कौन कह सकता है कि यह हिन्दी कविता नही। तीन चार स्थलों पर बगला के प्रत्ययों और विभक्ति-चिन्हो को छोड़ कर केवल उत्तर ही नही, दक्षिण भारत भी इसे अपनी काव्य-सम्पत्ति कह सकता है।

पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र द्वारा लिखित हिन्दी के महाकाव्य 'कृष्णायन' की निम्नलिखित पंक्तियां लीजिए। इन्हे किसी भी भारतीय भाषा में अन्तर्भूत किया जा सकता है —

महिधर-शृग शरीर विराटा,
उत्तमांग, पथु, तुग ललाटा।

वक्ष शैलहिम-शिला विशाला,
उत्थित वाम हस्त तरु शाला।
कर दक्षिण षट-कोण भयकर,
गदा उदग्र अशनि-प्रलयकर।

श्री सुमित्रानन्दन पत की निम्नलिखित पक्तियों को कुछ ही विभक्तियो के परिवर्तन से प्रत्येक भारतीय समझ सकता है—

श्रवण गगन मे गूज रहे स्वर ॐ ऋतो स्मर कृत ऋतो स्मर !
सृजन-हुताशन को हवि भस्वर बनी पुन. जीवन रज नश्वर !
दृष्टि दिशा में ज्योति-मूर्त स्वर ॐ ऋतो स्मर कृत स्मर,
ऋतो स्मर कृत स्मर ;

——स्वर्णकिरण, पष्ठ १४६ ।

गुजराती के आधुनिक कवि श्री नरसिंहराव भोलानाथ की "हृदय वीणा" शीर्षक कविता लीजिए—

सुन्दर शिव मगलगुण गाऊँ ईश्वरा
विभुवर भव भय हारक नमु महेश्वरा।
मधुर कुसुम विशे रमे गध सुदरा,
कौमुदी मुदप्रदा, उषा मनोहरा,
मृदुलकण्ठ कोकिलरव श्रवणसुखकरा।

ये पक्तियां किसी भी भारतीय भाषा के कवि की हृदय-वीणा की झकार हो सकती हैं।

सुदूर उड़ीसा प्रदेश की कविता भी इसी सास्कृतिक और भाषा-ऐक्य की घोषणा करती है। उदाहरणार्थ—सुप्रसिद्ध कवि मधुसूदन राव की "भारत भावना" लीजिए—

एहि कि से पुण्य भूमि भुवन-विदित,
सविस्तीर्ण रगभूमि आर्य-गौरवार ?
एहि कि भारत, यार महिमा सगीत-
गभीर-झंकारे पूर्ण दिग-दिगन्तर ?
एहि कि से सुमनोज्ञ आशा-सरोवर,
यार ज्ञानामृत-पाने कृतार्थ धरणी ?
यार तेज विभासित देश-देशान्तर ?

दक्षिण मे तमिल भाषी कहते हैं, उनकी भाषा में सस्कृत के शब्द नही। उन का यह कथन सर्वथा भ्रमपूर्ण है। मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रस्तुत तमिल भाषा के सबसे बडे कोश 'तमिल लैक्सीकन' पर दृष्टिपात करने से यह विदित हो जायगा कि तमिल की ५० प्रतिशत शब्दावली संस्कृत की है। महा शब्द से आरम्भ होने वाले शब्दो की ही संख्या आश्चर्यजनक है—

महाकच्छम, महागदम (=ज्वर), महागति, महाकन्द (=लशुन), महा-कपित्थ, महाखर्व, महाकवम् (=महाकवि), महाकल्पम्, माहहवम्, महाहासम् (=अट्टहास), महाकायम् (=हाथी,) महाग्रीवम् (=ऊंट), महाच्छायम् (=बड़ का वृक्ष), महाज्वालम् (=यज्ञ की अग्नि) महासंघम् महाशखम्, मह - जम्बु, महाशयम् (=समुद्र) महाजनम्, महाशाखा, महासुखम्, महाश्वासरोगम्, महाश्वेतम्, महाशूरन्, महात्यागम्, महात्मा, महादन्त, (=हाथी), महाधनम् (=१ सोना २ कृषि), महाधातु (=सोना), महाद्रुम् (=पीपल), महातेजम् (=पारा), महानागम् महानिद्रा, (=मृत्यु), महानिधि, महानिम्बम्, महानीलम् आदि आदि ।

केवल भारत ही नही, सिंहल, स्याम आदि देशों की भाषाएँ भी सस्कृत से अनुप्राणित है। उन की कविता, धार्मिक विचारधारा, प्रशासन की शब्दावली, वैज्ञानिक शव्दावली आद्योपान्त सस्कृतमय है। हम सिहली (लकानी भाषा) से भी सामान्य जीवन के कुछ शब्द उदाहरण के लिये लेगे। जहाँ पर भेद है, वहा अभिवारों में अर्थ दिया गया है। लोह (=धातु) गंगा (=नदी), वृकया, (=भेड़िया), मध्यरात्रिय, विनाड़ी, (=मिनिट), मोहोत (=मुहूर्त, सैकड), वसंत, देवस्थानय (=ईसाई गिरजाघर), सज्ञाकणुव (साइनपोस्ट), पाठशालाव, नागरिकशालाव (=टाउनहाल) शरीरस्थति (=स्वास्थ्य), शल्यवैद्य।

लका में सारे वैज्ञानिक शब्द संस्कृत से निर्मित किये जाते हैं—

तूर्यभाण्डय	पियानो
यन्त्रकारया	एजीनियर
मुद्राकणकारया	मुद्रक
रथचक्र	बाइसिकिल
रथचक्रसादना	बाइसिकिल बनाने वाला
गणन-पत्रय	बिल
आय-व्यय-लेखनय	औसत-पत्रक
सीमासहित समागम	लिमिटेड कम्पनी
धूमनाव	स्टीमर

उपद्रवारक्षक पत्रय	इश्योरेंस पालिसी
दूरशब्दनयन्त्रय	टैलीफोन

लका मे ग्रन्थों के नाम भी संस्कृतमय है—

अरबी निशोल्लासव (Arabian Nights) सहस्र रजनी चरित्र, "आरोग्य दर्पण्य" लेखक गुणवर्धन, १९२१ मे प्रकाशित "देहलक्षण विधाव", गुणवर्धन लिखत "धनोपायनक्रम" (१९१६), "गद्यविनिश्चय" (१९२७); रणसिह रचित "गणित-शास्त्रय", १९२६ मे मुद्रित "ज्योतिपकथोपकथनय" १९१४ मे प्रकाशित "महामारी रोग विभागय" आदि इसी शताब्दी की रचनाए है।

इसी प्रकार स्याम देश मे भी शब्दावली सस्कृतनिष्ठ है। कथा, कदाचार कदाहार (=हानिकर भोजन), कनिष्ठ भगिनी, कन्यकापति (=जामाता), कपटलेख आदि वहा के सामान्य शब्द है। प्रशासन सम्बन्धी शब्द लीजिए—

कर्म जलप्रदान	सिचाई विभाग
कर्म लोहकृत्य	खान विभाग
कर्म धर्मकार	धार्मिक विभाग
कर्म नगरादर	नगर-शासन विभाग

नीचे मै अर्थ सहित कुछ शब्दों की सूची देता हूँ, जिस से ज्ञात हो जायगा कि सस्कृतनिष्ठ शब्दावली ही समस्त भारत, स्याम, सिहल, डच, हिदेशिया आदि को पुन. प्रेम की शृखला मे बांध सकेगी।

स्यामी शब्द	अर्थ
कर्मकार परिषद	कम्पनी का डाइरेक्टर
कर्मवाचा	कर्मवाच्य
कर्मशूर	चतुर काम करनेवाला
कर्मसंपादिका सभा	कार्यकारिणी सभा
कर्मसार्थी	साथ में काम करनेवाला
त्रिकोण	त्रिकोण
त्रिकोणमिति	त्रिकोणमिति
बीजगणित	बीजगणित
रेखागणित	रेखागणित
पाटीगणित	अंकगणित
ओष्ठज	ओष्ठ्य वर्ण
ओघ	जल का ओधा

एकचक्षु	काणा
एकमय	समरूपता
एकराज	राजा
एकसार	आवश्यक पत्र
एकवचन	एकवचन
उपराज	वाइसराय
उपचक्षु	चश्मा

अन्तिम शब्द ध्यान देने योग्य है। स्याम का "उपचक्षु" बतलाता है कि यदि हम सस्कृत से ही सामान्य शब्द लेगे, तभी भारत की सास्कृतिक एकता स्थिर रह सकेगी।

राष्ट्रलिपि

हमारी देवनागरी इस देश की ही नही, समस्त ससार की लिपियो में सब से अधिक वैज्ञानिक लिपि है। हमारी लिपि स्वरो और व्यजनो का जैसा वैज्ञानिक पृथक्करण है, वैसा अन्य लिपियों मे नही। 'अ' का उच्चारण हर स्थान पर 'अ' ही होगा और 'इ' का 'इ' ही ; 'क' यदि कही लिखा जायगा तो वह 'क' ही पढा जायगा और कुछ नही। अग्रेजी मे जिस प्रकार 'बी यू टी' बट का 'यू' 'अ' पढा जाता है और 'पी यू टी' पुट का 'यू' 'उ' वैसा हमारी लिपि मे नही होता। हमारी लिपि में लिखे जाने वाले शब्दों के वर्ण-विन्यास में भी कोई कठिनाई नही पड़ती। अग्रेजी शब्दो मे जिस प्रकार मूक (साइलेन्ट) अक्षर रहते है, वैसे हमारे यहा नही। उर्दू मे अक्षरों को मिलाकर लिखने और नुकतो के कारण उसके पढ़ने मे जो अड़चने आती हैं, वे हमारी लिपि मे नही। हर विषय की शिक्षा हमारी लिपि के द्वारा जितनी सुगमता से दी जा सकती है, उतनी अन्य किसी लिपि के द्वारा नही। फिर हमारी लिपि सस्कृत लिपि होने के कारण अन्य प्रान्तीय भाषाओं की लिपियों के जितनी सन्निकट है, उतनी अन्य कोई लिपि नही। मराठी मे तो इसी लिपि का उपयोग होता है, गुजराती लिपि और हिन्दी लिपि मे भी अधिक अन्तर नहीं और बंगला लिपि के भी अधिकांश अक्षर नागरी लिपि से मिलते-जुलते हैं। इतना ही नही, वर्मा, सिहल, मलाया, स्याम, हिन्देशिया और हिन्द चीन आदि की वर्णमालाए भी प्राय. हमारी वर्णमाला के ही समान हैं। फिर भी आधुनिक यंत्रकाल में उस मे थोड़े-बहुत सुधारो की आवश्यकता है। विशेषज्ञों की राय से हमें इन सुधारों को अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिये। इस दिशा में हम संकुचित वृत्ति न रखें। हमारी भाषा और साहित्य मे निर्माण का कार्य हमें तेजी से अवश्य चलाना है, और जीवित भाषा मे

भाषा के लिए स्वच्छन्दता की भी आवश्यकता है। स्वच्छन्दता मे बंधन अखरते है, तथापि कुछ-न-कुछ नियत्रण भी आवश्यक होते है। इस क्षेत्र मे हमे बहुत सूक्ष्म अनुसधान की ओर तो न जाना चाहिए, कितु भाषा के रूप के सबध मे विद्वानो को एकत्रित होकर, कुछ-न-कुछ निश्चय कर लेना आवश्यक है। दृष्टान्त के लिए किस स्थान पर 'यी' और किस स्थान पर 'ई' कहाँ 'ये' और कहाँ 'ए' का उपयोग हो, इसका निश्चय होना है। इसी प्रकार के अन्य अनेक प्रयोग अभी अनिश्चित हैं। श्री रामचन्द्र वर्मा ने इस विषय पर 'अच्छी हिन्दी' और श्री किशोरीदास बाजपेयी ने 'लेखन कला' पुस्तक लिखी है, पर इसे मै आरम्भ मात्र मानता हूँ। इस विषय में विद्वानो की एक समिति का आयोजन होना चाहिए।

छपाई, टाइप राइटर, तार आदि के लिए लिपि मे सुधारो की और अधिक आवश्यकता है। इस सम्बन्ध मे गत वर्ष सम्मेलन के सभापति पद से दिये गये अपने भाषण मे महापण्डित राहुलजी ने जो कुछ कहा था, उसे हमे कार्य रूप मे परिणत करने का प्रयत्न करना चाहिए।

निर्माण के कार्य में साहित्य का स्थान

देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रलिपि के प्रश्न के अतिरिक्त हमारे सामने देश के निर्माण कार्य मे साहित्य के निर्माण का प्रश्न उपस्थित होता है। यहाँ साहित्य शब्द को मै अत्यन्त व्यापक अर्थ मे लेता हूँ। अग्रेजी के 'लिट्रेचर' शब्द से साहित्य शब्द का पूरा अर्थ नही निकलता। जिस प्रकार अग्रेजी का 'रिलीजन' शब्द धर्म का पूरा अर्थ नहीं करता, उसी प्रकार अग्रेजी का लिट्रेचर शब्द हमारे साहित्य शब्द का नही। जैसे हमारे 'धर्म' शब्द मे जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातो का समावेश हो जाता है, वैसे ही साहित्य शब्द के अन्तर्गत इतिहास, ज्योतिष, विज्ञान, काव्य सब कुछ आ जाते है। मनष्य और पश का सबसे प्रधान अन्तर दोनो की भाषा द्वारा प्रकट होता है। पशु जिस भाषा मे बोलता है, मानव नही। और बर्बर मानव की जैसी भाषा होती है, सभ्य मानव की नही। सभ्य मानव ही साहित्य का सृजन कर सकता है और इस सृजन का साधन भाषा रहती है। विदेशियो ने विदेशी राज्य के साथ विदेशी भाषा भी हम पर लादी थी। हम सभ्य थे, हमारी भाषा थी, अतः वे अपने काम मे पूर्णतया सफल तो नही हुए, पर विदेशी राज्य तथा विदेशी भाषा के बोझ ने हमे ससार की सभ्यता की दौड़ मे पीछे अवश्य रख दिया। साहित्य-सृजन मे भी पीछे रहने का यही प्रधान कारण है। समृद्ध देश के लिए समृद्ध साहित्य अनिवार्य है। हमारा देश प्राचीनतम देशों में से है। उसका पुराना इतिहास है, संस्कृति है, सभ्यता है, सभी कुछ है ; और यह सब हमे अपने प्राचीन साहित्य

मे मिलता है, जिसका सृजन हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी मे भी हुआ है ; परन्तु देश के सारे कार्य चलाने के लिए न हमारे पास पूरा साहित्य है और न उस साहित्य सजन के लिए उपयुक्त शब्दावली। हमे एक ओर यह साहित्य-सृजन करना है और दूसरी ओर नयी शब्दावली गढनी है।

गत तीस वर्षो मे हिंदी मे साहित्य का यथेष्ट सर्जन हुआ है। इतने कम समय मे कदाचित् किसी भारतीय भाषा मे इतना सृजन नही हुआ, जितना कि हिंदी मे। अभी तक कुछ लोग समझते है कि हिंदी में साहित्य नही के बराबर है। हिंदी अहिंदी प्रातो के रहनेवाले ही यह समझते हों और इसका प्रचार करते हो, यह बात नही ; हिंदी-भाषा-भाषी भी अनेक बार इसे स्वीकार कर लेते है। ये लोग द्वेष-भाव से प्रेरित होकर ऐसा करते हैं, यह मेरा अभिप्राय नहीं है, अधिकतर भ्रमवश ही ऐसा हो रहा है। तीस-पैंतीस वर्ष पहले हमारे साहित्य के लिए जो कहा जाता था, आज भी प्रायः वही कहा जाता है। इस बीच हिन्दी साहित्य कहाँ से कहाँ पहुँच गया है, इसका हमारे अधिकांश भाइयो को ज्ञान नही है। अहिंदी भाषियों को तो बिल्कुल ही नही। इस भ्रम का निवारण अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में मैं एक सुझाव रखना चाहता हूँ। हमारे देश की राजधानी दिल्ली और हमारे समस्त प्रातो की राजधानियो तथा अन्य मुख्य नगरो मे सम्मेलन द्वारा प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाना चाहिए। इन प्रदर्शनियों मे हिंदी की चुनी हुई मौलिक तथा अनूदित पुस्तको, पत्र-पत्रिकाओ आदि का सकलन हो। प्रकाशको और ग्राहको आदि के आकड़े भी प्रदर्शित किये जायँ। बड़े-बड़े पुस्तकालयो के सूचीपत्रों, खोज की रिपोर्टों ; जैसे—लाला सीताराम की 'सरवे कमेटी की रिपोर्ट' डाक्टर माताप्रसाद गुप्त की 'पुस्तक-जगत्' आदि का प्रदर्शन हो। इन प्रदर्शनियों मे इन्ही विषयों पर भाषण, प्रचार आदि विविध कार्यक्रमों की भी व्यवस्था की जाय।

नव शब्द-निर्माण का कार्य कई स्थानो पर चल रहा है। जहाँ तक मुझे मालूम है, इस दिशा मे नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, कलकत्ता और मद्रास के विश्वविद्यालय, बगीय साहित्य-परिषद्, मराठी साहित्य परिषद् और मध्यप्रातीय सरकार द्वारा विशेष प्रयत्न हो रहे है। यदि इस दिशा मे काम करने वाले समस्त विद्वानो और सस्थाओ की सूची बनायी जाये, तो कदाचित् वह बहुत बढ़ जायगी। यह एक विचारणीय विषय है कि पुनरावृत्तियो को रोकने के लिए इस दिशा में केन्द्रीयकरण उचित होगा अथवा अभी यह सब कार्य पृथक्-पृथक् ही चलने दिया जाय और जब यह यथेष्ट हो चुके, तब इसे सयोजित कर इसका सारभाग ग्रहण कर लिया जाय। दोनों बाते ही हो सकती है। पृथक्-पृथक् कार्य यदि अभी चलने भी दिया जाय और यदि पुनरावृत्तियाँ भी हो जायँ, तो भी मुझे विशेष हानि नही

दिखती, क्योकि इस मे कुछ अधिक आर्थिक व्यय के अतिरिक्त और क्या हानि होगी ? भिन्न-भिन्न विद्वान् शब्दो के भिन्न-भिन्न रूप हमारे सामने रखेगे और अन्त मे सब कृतियो की काट-छाट होकर सभी विषयों पर सुन्दर, प्रामाणिक शब्दावली हमारे सामने आ जायगी। इस शब्दावली का अन्तिम स्वरूप निर्णय करने के लिए केन्द्रीय सरकार और अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सहयोग की आवश्यकता पडेगी। ये पारिभाषिक शब्द सब प्रातीय भाषाओं के विद्वानों के सहयोग से समस्त प्रांतीय भाषाओ के लिए समान हो सकते है ; परन्तु हमे स्मरण रखना चाहिए कि यदि हम इन पारिभाषिक शब्दो को समस्त भारतीय भाषाओ के लिए उपयुक्त बनाना चाहेगे, तो इनमे से अधिकाश हमे सस्कृत से ही लेने होंगे। यदि इन का स्रोत संस्कृत रहा, तो भारत के अतिरिक्त बर्मा, सिहल, स्याम, आदि बृहत्तर भारत के देशो मे भी इन शब्दों का प्रयोग हो सकेगा और इस प्रकार एशिया के देश एक दूसरे के अधिक समीप आ सकेगे। अग्रेजी पढे-लिखे विद्वानो का मत है कि वैज्ञानिक शब्दावली अग्रेजी से लेनी चाहिए। यदि २००-४०० शब्द होते तो इसमे भी हमे कोई आपत्ति न होती, किन्तु वैज्ञानिक शब्दों की सख्या लाखों है, और वैज्ञानिक शब्दों का परस्पर इतना गहरा सम्बन्ध है कि यदि हम एक शब्द अग्रेजी से लेते है, तो उसके साथ साथ सम्बन्ध रखनेवाले सैकड़ों शब्द हमे वही से लेने पडते है।

उदाहरण के लिए एक शब्द फास्फरस ही लीजिए—

Phos-Phosphagen Phospham, Phosphamide, Phosphatase, Phosphate, Phosphated, Phosphatemia, Phosphate rock, Phosphatese, Phosphatic, Phosphatide, Phosphatization; Phosphatize, Phosphato, Phosphazo; Phosphene, Phosphenyl, Phosphide, Phosphinate, Phosphine, Phosphine oxide, Phosphinic, Phosphite, Phosphor, Phosphoaminolipide, Phosphocarnic acid, Phosphocreatine, Phospoferrite, Phosphomolybdic, Phospholipide, Phosphomolybdate, Phosphoglycerate, phosphonic, Phosphonium, Phosphophyllitee, Phosphoprotein, Phosphor, Phosphorate, Phosphorate oil; Phosphor bronze, Phosphoreal, Phosphoresce, Phosphorescence, Phosphorescent, Phosphoreted, Phosphoreted hydrogen, Phosphohidrosis, Phosphoric, Phosphoric acid, Phosphorical, Phosphoriferouos,Phosphorism, Phosphorite, Phosphorize, Phosphoregen, Phospho-

rogenic, Phosphorograph, Phosphorographic, Phosphorography, Phosphoroscope, Phosphorous, Phosphorous acid, Phosphorous anhydride or oxide, Phosphoruria, Phosphorus, Phosphorus chloride, Phosphorus diсease, Phosphorus oxide, Phosphorus pentachloride, Phosphorus sulphide, Phosphorus sesquisulphide Phosphorus trichloride, Phosphoryl, Phosphorylation, Phosphoryl chloride, Phosphosilicate, Phosphotartaric Phosphotungstic, Phosphuranylite, Phosphuria, Phosphyl, Phossy, Phossyjiaw.

यह काम लम्बा, जटिल और कष्टसाध्य है। कहाँ-कहाँ क्या-क्या हो रहा है, इसका ब्योरेवार वृत्त मुझे ज्ञात नही। हाँ, दो स्थानो पर क्या हो रहा है, यह मैं जानता हूँ। महापण्डित राहुलजी ने अभी हाल ही मे सम्मेलन से सोलह सहस्र शासन-शब्दों का एक कोश प्रकाशित कराया है। सन् १९४९ के अन्त तक सभी विषयो के लगभग एक लाख शब्द राहुलजी तैयार करनेवाले है। हमारी मध्यप्रातीय सरकार ने सन् १९४६ मे ही डा० रघुवीरजी की अध्यक्षता मे यह कार्य आरम्भ कर दिया था। ५० के लगभग विद्वान् इसमे सलग्न है, और केवल शब्दावली ही नही ; किन्तु ग्रन्थ-निर्माण भी हिन्दी और मराठी भाषाओ मे हो रहा है। हमे आशा है कि अगले ५-६ मास मे विश्वविद्यालय के सभी पाठ्यग्रन्थ प्रकाशित होकर विद्यार्थियो के सामने आ जायेंगे। रसायन, भौतिक, वनस्पति तथा प्राणिशास्त्रो और गणित के लगभग ३० ग्रन्थ अब तक बन चुके है। इसके अतिरिक्त अन्य विषयों की शब्दावली भी तैयार है। हमारे प्रात के सभी वाणिज्य-महाविद्यालयो में हिन्दी और मराठी द्वारा शिक्षण हो रहा है। रेल, मोटर, तार, शासन, पाश्चात्य आयुर्वेद आदि के डेढ लाख शब्दों का निर्माण हो चुका है। जो काम मध्यप्रातीय शासन के अधीन रहा है, उसमे विशेषता यह है कि आरम्भिक शिक्षा से लेकर उच्च गवेषण तक के सभी शब्द प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

साहित्य के दो विभाग

साहित्य के निर्माण की ओर यदि हम दृष्टिपात करे और साहित्य शब्द को व्यापक-से-व्यापक अर्थ मे भी ले, तो साहित्य-निर्माण को दो भागो मे बाटा जा सकता है—एक शास्त्रीय साहित्य, जिसके अन्तर्गत वैज्ञानिक साहित्य भी आ जाता है और दूसरा ललित साहित्य। प्रथम प्रकार के साहित्य मे विज्ञान, दर्शन, इतिहास, ज्योतिष आदि शास्त्रों का समावेश होता है। हमारे यहाँ इस प्रकार के साहित्य की

घोर कमी है, यहाँ तक कि हमारा कोई प्रामाणिक इतिहास तक आज उपलब्ध नही है। विदेशी विद्वानों ने हमारे प्राचीन इतिहास की कुछ खोज अवश्य की है। मौर्यवश से लेकर गुप्तवश तक हमारे प्राचीन इतिहास के अनेक अश सामने आये है , परन्तु अब तक इस काल का भी कोई शृखलाबद्ध इतिहास उपलब्ध नही है। विक्रमीय सवत जिस विक्रमादित्य के नाम से चलता है, उसका भी हमे पता नही है। फिर विदेशियों ने एक ओर यदि हमारे इतिहास का पता लगाने का प्रयत्न कर हम पर उपकार किया है, तो दूसरी ओर हमारे ही इतिहास में स्थान-स्थान पर हमे छोटा दिखाने का यत्न कर हमारा अपकार भी कम नही किया। दृष्टान्त के लिए अब तक यह माना जाता था, और अभी तक अधिकांश विद्वान यही समझते है, कि सिकन्दर हमारे देश से जीतकर लौटा था, परन्तु हाल ही मे कुछ वर्ष पूर्व मेरे मध्यप्रांत के अमरावती कालेज के प्रोफेसर डा० हरिश्चन्द्र सेठ ने यूनानी इतिहास के लेखो के आधार पर यह सिद्ध किया है कि सिकन्दर की यहाँ जीत नही, हार हुई थी। हमारे देश के अधिकाश इतिहास का एक तो अभी तक पूरा पता ही नही लगा और जितने इतिहास का पता भी लगा है, उसमे भी बहुत-सा विकृत रूप मे उपस्थित किया गया है।

साहित्य के ललित विभाग में इन वर्षो में यथेष्ट सृजन हुआ है। ललित साहित्य का कार्य केवल आनन्द देना है या शिक्षा भी—यह एक विवादग्रस्त विषय रहा है। अग्रेजी मे 'आर्ट फार आर्ट्स सेक'—'कला कला के लिए ही है' यह एक बडा पुराना सिद्धान्त है। इस सम्बन्ध मे फ्रास के प्रसिद्ध साहित्यकार रोमाँ रोलाँ ने जो कुछ अपने उपन्यास 'जान क्रिस्तोफर' मे कहा है, वह कुछ लम्बा होने पर भी मैं यहाँ उद्धृत करना चाहता हूँ। वे कहते है—

"कला के लिए कला ! क्या ही अच्छा धर्म है; परन्तु यह धर्म तो बलवानों का है। कला ! जीवन को वैसे ही जकड़कर पकड़ना, जैसे गरुड़ अपने आखेट को पकड़ता है, उसे लेकर ऊपर उठना, गगन मण्डल की अखण्ड शाति मे उसे लेकर उड़ जाना। इसके लिए तुम्हें सुदृढ पजों, महान् पखों और बलवान हृदय की आवश्यकता है। कला का अर्थ है—नियंत्रित, संयमित, मर्यादित जीवन। कला जीवन की सम्राज्ञी है। तुम साधारण अभिनेता हो, परन्तु इतने कुशल अभिनेता भी नही कि अपने अभिनय में अपने को भी भूल सको। जिस प्रकार ये अभिनेता अपनी शारीरिक त्रुटियों तथा दोषों के द्वारा पैसा पैदा करते है, उसी प्रकार तुम भी अपनी मानसिक तथा आत्मिक त्रुटियों से लाभ उठाते हो। तुम अपनी तथा जनता की कुरूपता का उपयोग कर साहित्य का निर्माण करते हो। तुम्हारे उपदेश के मूल में ही मृत्यु है। कला तो जीवन का स्रोत है, परन्तु तुम्हारे, सबसे अधिक ईमानदार समझे जाने

वाले लेखक तक इतने कायर है कि उनके आँखो की पट्टी खुल जाने पर भी वे न देख सकने का बहाना करते है। वे धृष्टतापूर्वक कहते है—'हाँ, कला के लिए कला का सिद्धान्त भयानक है, विषैला है, परन्तु उसमे वृद्धि है, प्रतिभा है।' वाह! कितना विचित्र तर्क है, मानो किसी गुण्डे को दण्ड देते हुए न्यायाधीश कहे कि 'यह पापी अवश्य है ; परन्तु इसमे बडी बुद्धि है, बडी प्रतिभा है।'

रोमाँ रोलाँ महोदय के कथनानुसार ललित साहित्य के निर्माताओ को कितना ऊँचा उठना आवश्यक है, यह कहना निरर्थक है , साथ ही ऐसा साहित्य प्रत्यक्ष मे उपदेश न देते हुए भी मानव-मन को किस ओर किस प्रकार ले जायगा, यह भी कहना अनावश्यक प्रतीत होता है।

नाटक और रंगमंच

ललित साहित्य मे नाटक का सर्वश्रेष्ठ स्थान है, यह सारे ससार के साहित्यज्ञ मानते हैं। इसके कई कारण है—पहला कारण तो यही है कि जहाँ अन्य ललित साहित्य केवल श्रवणेन्द्रिय द्वारा आनन्द देता है, वहाँ नाटक श्रवणेन्द्रिय और दृश्येन्द्रिय दोनो के द्वारा आनन्द देता है। दूसरे, नाटक मे अनेक ललित कलाओ का एक स्थान पर समावेश होता है। हिन्दी मे भारतेन्दु के पश्चात् बहुत समय तक नाटको की बडी कमी रही , परन्तु इधर कुछ लेखको ने नाटक लिखे है। नाटक रचना तब तक पूर्ण से सफल नही हो सकती, जब तक रगमच की उचित व्यवस्था न हो। अच्छे रगमच हमारे निर्माण कार्य मे अत्यधिक सहायता दे सकते है। इस सम्बन्ध मे रूस का उदाहरण हमारे सामने है। इस दृष्टि से यह युग 'सिनेमा युग' कहा जाता है, परन्तु अमेरिका मे जहाँ 'हालीवुड' के महान् सिनेमा-स्टूडिओ है, वहाँ भी नाटक का पुनरुत्थान हो रहा है। चित्र प्रत्यक्ष का स्थान सदा के लिए नही ले सकते। नाटक की अपनी विशेषता है, जो सिनेमा को प्राप्त नही हो सकती। मेरे मतानुसार हिन्दी मे रगमच एक राष्ट्रीय आवश्यकता है।

सिनेमा

सिनेमा का स्तर भी हमारे देश मे उन्नत होने के स्थान पर अवनत होता जा रहा है। इसी देश मे किसी समय चण्डीदास, देवदास, अमृत-मथन, अमर-ज्योति, पुकार इत्यादि के सदृश चित्रपट निकले, परन्तु इधर ऐसे चित्रपटो का निर्माण प्राय. बन्द-सा हो गया है। चित्रपटो मे अश्लीलता भी बढती जाती है। मै इस राय से बिल्कुल सहमत नही कि यहाँ की जनता ही अच्छे चित्र नही देखना चाहती। जिन अच्छे चित्रपटो का मैंने उल्लेख किया है, वे अत्यन्त लोक-प्रिय चित्र भी थे। नाटक के सदृश

सिनेमा का भी राष्ट्र-निर्माण में बहुत बडा हाथ हो सकता है। सरकारी सेसर को इस दिशा मे बहुत अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। अनेक देशों मे शिक्षा-सम्बन्धी चलचित्रों के निर्माण की कई संस्थाएँ है। हमे भी इस देश मे ऐसी सस्थाएँ चाहिए।

रेडिओ

रेडिओ को भी आज बहुत बडा स्थान प्राप्त हो गया है। रेडिओ द्वारा अनत ज्ञान का प्रसार किया जा सकता है। रेडिओ की आवश्यकता नगरो की अपेक्षा गॉवों मे अधिक है, क्योकि वहॉ के निवासियो मे पढे-लिखे लोगों की संख्या बहुत कम है और ऐसे लोगों की ज्ञानवृद्धि जितनी शीघ्र रेडिओ से हो सकती है, अन्य किसी वस्तु से नही। भारत मे केन्द्र में ही नही, अधिकांश प्रान्तों में भी प्रान्तीय ब्राडकास्टिग स्टेशन खुल गये है, परन्तु इन स्टेशनों से जो कुछ प्रसारित किया जाता है, उसकी सामग्री और भाषा दोनों ही दोषो से ओतप्रोत है। भाषा की दृष्टि से तो रेडिओ का बहुत समय तक सम्मेलन ने बहिष्कार तक किया था। जिस समय सम्मेलन ने रेडिओ का बहिष्कार कर रखा था, उस समय मे और आज मे बडा अन्तर हो गया है। अब देश स्वतन्त्र है। पाकिस्तान की स्थापना हो गयी है; पर इतने पर भी, आज भी रेडिओ का सारा वातावरण अराष्ट्रीय है। रेडिओ के तीन प्रधान विभाग है—

(१) गृह विभाग (होम-सर्विस)
(२) समाचार विभाग (सेन्ट्रल न्यूज ऑरगानाइजेशन)
(३) विदेशी विभाग (एक्सटर्नल सर्विसेज़)

प्रथम विभाग भारतवासियो के लिए है, दूसरे का सम्बन्ध समाचारो से है और तीसरे विभाग द्वारा विदेशों मे भारत से सम्बन्ध रखने वाली बातों का प्रचार किया जाता है। जो भारतीय भारत के बाहर उपनिवेशों में निवास करते है, उनसे सम्पर्क स्थापित करने का कार्य भी यह तीसरा विभाग ही करता है।

तीनो विभागों का सचालन ऐसे लोगो के हाथ मे है, जिनमे अधिकाश को न भारतीय संस्कृति का ज्ञान है और न हमारी भाषा का। रेडिओ के इस अवस्था मे रहने के अनेक कारण है, जिनमे निम्नलिखित मुख्य है—

(१) हमारी राष्ट्रीय सरकार होने पर सरकार का ध्यान अब तक रेडिओ की ओर नही गया। मत्रियों के भाषणो को छोडकर अन्य कौन सा प्रचार रेडिओ द्वारा किया जाता है, इस ओर सरकार का कोई लक्ष्य नही।

(२) बुखारी साहब और उनके कुछ साथियो के चले जाने पर भी, अभी तक रेडिओ पर बुखारी-समूह का ही अधिकार है।

(३) नये कर्मचारियों की नियुक्तियों में भी भारतीय संस्कृति के जानकारो की ओर कोई ध्यान नही दिया जा रहा है, क्योंकि इन नियुक्तियों को करने वाले अधिकारियों मे भारतीय संस्कृति को जाननेवाले व्यक्ति ही नही है।

(४) "रेडिओ-हिन्दी-परामर्श-समिति" के एक भी सुझाव को कार्यरूप मे परिणत नही किया जाता।

इसके निम्नलिखित फल हुए है—

(१) रेडिओ द्वारा किसी भी प्रकार का भारतीय सास्कृतिक प्रचार नही होता।

(२) रेडिओ द्वारा जो रूपक तथा नाटक प्रसारित किये जाते है, उनमे आज भी अधिकाश ऐसे होते है, जो सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक धरातल की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण नही कहे जा सकते।

(३) रद्दी और टुच्चे फिल्मी गाने गाये जाते है, जो लोक-रुचि को दूषित करते है।

(४) इस प्रकार के कार्यक्रम विदेशो मे भी भारत को नीचा दिखाते है।

भाषा की दृष्टि से भी रेडिओ अत्यधिक दूषित है। कुछ समय पूर्व भाषा में थोड़ा-बहुत सुधार हुआ था, पर अब फिर इसमे परिवर्तन हुआ है। इसका मुख्य कारण कदाचित् उर्दू पत्रों का प्रचार है। यह प्रचार किस प्रकार किया जा रहा है, इस सम्बन्ध मे मैं यहाँ एक दृष्टान्त देना चाहता हूँ। 'तन्वीर' नामक उर्दू का एक दैनिक पत्र लखनऊ से निकलता है। उर्दू-जगत मे इस पत्र की यथेष्ठ प्रतिष्ठा है। ता० १४ अक्टूबर सन् १९४८ के अपने अक मे 'अखिर यह कौन सी जबान है' शीर्षक अग्रलेख मे इस पत्र ने जो कुछ लिखा है, वह ध्यान देने योग्य है। वह लिखता है—

"रेडिओ की जबान मे बाज अलफाज़ तो रायजुल वक्त अलफाज के मुकाबले मे इतने भोडे और लचर होते हैं कि वेखबरी मे बाज औकात यह मालूम होता है कि कोई गाली दे रहा है, जो खबरो मे शामिल हो गयी है।"

इस प्रकार के अलफाजो की इसी लेख मे एक लम्बी सूची दी गयी है। इस सूची के कुछ शब्द को देखिए—

'आयु, सहायता, वर्ज, चर्चा, अधिकार, विरोध, शनिवार, उचित उपाय, अधिकारी, न्याय, शिक्षा, निश्चय, स्वीकार, इतिहास, शासन, सम्बन्ध, समय, घटना पद की शपथ लेना, समाप्त।'

ये शब्द भोंडे और लचर तथा गालियो से प्रतीत होते है।

पत्र सिफारिश करता है—"अगर हिन्दुस्तानी के लफ्ज का इस्तेमाल रखना ही चाहते है, तो हिन्दुस्तानी ही जबान भी इस्तेमाल करनी पडेगी, जो तक्सीम से पहले होती रही है। अगर वो इस पर तुले हुए है कि हिन्दुस्तानी का लफ्ज भी इस्तेमाल करते रहें और इस्तेमाल इसी जबान को करते रहे, तो उर्दू की खबरे किसी दूसरे वक्त मे सुनानी शुरू कर दे ताकि मुल्क की अक्सरीयत जिस जबान को समझ सकती है और शरीफ लोगो की मजलिश मे समझी और बोली जाती है, उसको भी आगे बढने का मौका मिले।"

यह है भारत की अक्सरीयत और शरीफ लोगो की मजलिस मे बोली जानेवाली जबान! धन्य है!

रेडिओ सदृश देश और विदेश मे प्रचार के सबसे बडे साधन की ओर हमे और हमारी सरकार को ध्यान देना ही होगा। छोटे-मोटे सुधार से यहाँ काम न चलेगा, इस विभाग मे तो पूर्ण क्रान्ति आवश्यक है।

पत्र-पत्रिकाएँ

हिन्दी मे पत्र-पत्रिकादि का प्रकाशन तो बढता जा रहा है; पर अभी हमारे पत्रो मे सुधार के लिए बहुत अधिक स्थान है। अग्रेजी पढे-लिखे मराठी, गुजराती, बगला भाषा-भाषी अपनी-अपनी मातृभाषा के पत्रों को पढकर अग्रेजी पत्रों को पढने की आवश्यकता अनुभव नही करते, परन्तु अग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दी-भाषा-भापियो की यह स्थिति नही है। जिन्हे अग्रेजी का ज्ञान है, ऐसे हिन्दी-भाषा-भाषियो का भी इसमे थोड़ा-बहुत दोष हो सकता है ; परन्तु इसमे मैं सबसे अधिक दोष मानता हूँ हिन्दी मे मराठी, गुजराती और बॅगला के सदृश पत्रो का अभाव। इसका उत्तर-दायित्व पत्रकारो पर नही है। उन बेचारो के पास अग्रेजी या अन्य प्रातीय भाषाओं के सदृश साधन नही है। फिर विज्ञापन आदि के रूप मे जो सहायता सरकार और अन्य विज्ञापनदाताओ की ओर से अंग्रेजी तथा बम्बई, कलकत्ते आदि व्यापारिक नगरों से निकलने वाले प्रान्तीय भाषाओ के पत्रों मे मिलती है, वह हिन्दी-पत्रों को नही। इस सम्बन्ध मे हम व्यापारियो तथा उनकी कपनियो से तो केवल अनुरोध कर सकते है कि वे हिन्दी-पत्रो को भी उसी दृष्टि से देखे, जिस दृष्टि से वे अन्य भाषाओं के पत्रों को देखते है, परन्तु हम अपनी केन्द्रीय और प्रातीय सरकारों को इस विषय मे बाध्य कर सकते है।

एक कारण और है, जिससे हमारे हिन्दी-पत्र उन्नति नही कर पाते। उन्हे सभी समाचार अग्रेजी मे मिलते है, क्योकि न तो अभी किसी ऐसी समाचार सस्था का

निर्माण हुआ है जो हिन्दी मे ही समाचार भेजे और न अभी हिन्दी टेलीप्रिंटर ही निकला है। हिन्दी-पत्रो को सारे समाचार अग्रेजी मे प्राप्त कर उनका पहले हिन्दी-अनुवाद करना पडता है। हिन्दी-पत्रो के लिए हिन्दी मे तारो के मिलने की और हिन्दी के टेलीप्रिंटर द्वारा समाचारो के मिलने की व्यवस्था होनी चाहिए।

वाणिज्य-जगत् में अंग्रेजी का प्रभुत्व

यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि हमारे वाणिज्य-जगत् मे आज भी अंग्रेजी का ही दौर-दौरा है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे यह क्षम्य है, परन्तु देश के व्यापार मे नही। हमारे पत्र-पत्रिकादि की व्यापार-क्षेत्र मे अवहेलना का कारण इस क्षेत्र मे अग्रेजी का प्रभुत्व है।

ग्राम साहित्य

साहित्य-सृजन की ओर दृष्टिपात करते समय हम एक और बात को भी विस्मृत नही कर सकते। स्वतन्त्रता के पश्चात् हमे केवल बालको को ही नही, अपने देश के प्रौढो को भी शिक्षित करना है। इस देश की ८० प्रतिशत जनता ग्रामो मे निवास करती है। अभी तक जिस साहित्य का सृजन तथा प्रकाशन हुआ है, उसमे से अधिकाश साहित्य शहराती साहित्य है। हमे अब सबसे अधिक ध्यान गाँवो की ओर देना है और अपने साहित्य, नाटक, रंगमच, सिनेमा, रेडिओ और पत्र-पत्रिकाओ को ग्रामो के अनुकूल भी बनाना है। रूस ने इस दिशा में अपनी भाषाओ की ही नही, पर उपभाषाओ की भी उन्नति की है। क्या हम यह न करेगे ?

विदेशी भाषाओं को प्रतिदान

हमने विदेशी भाषाओ से हिन्दी मे बहुत कुछ लिया है ; पर अब वह समय आ गया है, जब हम अपनी भाषा से भी विदेशों को कुछ दे। ससार में किसी देश की प्रतिष्ठा उसके विचारक तथा साहित्यिक ही बढ़ाते है। गुरुदेव कवि-सम्राट् रवि बाबू ने अपनी कृतियो को अंग्रेजी द्वारा ससार को देकर हमारे देश की भी जैसी प्रतिष्ठा बढायी है, वह किसी से छिपा नही है। रवीन्द्र बाबू के अतिरिक्त भी इस देश मे ऐसे अनेक साहित्यिक है, जिनकी कृतियाँ ससार के किसी भी देश की उत्तम-से-उत्तम साहित्यिक रचनाओ से टक्कर ले सकती हैं। इस दिशा मे हमे अग्रेजी भाषा का ही सहारा लेना होगा। उस भाषा को हम जानते हैं और उसका अन्तर्राष्ट्रीय स्थान भी है। यदि हम अग्रेजी-द्वारा संसार के साहित्य को कुछ देगे, तो हमारे साहित्य और देश दोनो का गौरव बढ़ेगा। मैंने 'नोबल पुरस्कार'-विजेता

कई साहित्यिको की कृतियाँ पढी है और मै बिना किसी सकोच के कह सकता हूँ कि इस देश का साहित्य, यदि ससार के सामने जाता, तो हमारे अनेक साहित्य-सृष्टा 'नोबल-पुरस्कार' प्राप्त करते।

महात्मा गाधी के नेतृत्व के पश्चात् और विशेषकर देश के स्वतन्त्र होने के उपरान्त, भारत को ससार मे एक विशेष स्थान प्राप्त हो गया है। अभी हाल ही मे हमारे प्रधानमत्री प० जवाहरलाल नेहरू यूरोप गये थे। उन्होंने वहा से लौटकर, भारत पश्चिमी जगत् मे किस दृष्टि से देखा जाने लगा है, इस सम्बन्ध मे हमे कई बातो का दिग्दर्शन कराया है। गत दो महायुद्धो की हिसा से जर्जरित यूरोप पर गाधीजी के व्यक्तित्व, उनके चरित्र, उनके सिद्धान्तो और उनके उपदेशो का बड़ा गहरा प्रभाव पडा है। अहिसा द्वारा भारत को, जो स्वातन्त्र्य-प्राप्ति हुई है, उसने इस प्रभाव को और भी गहरा कर दिया है। विश्व की भावी शाति के लिए आज ससार हमारे देश की ओर देखने लगा है। ऐसे अवसर पर ससार हमारे साहित्य का कितना आदर करेगा, इसकी कल्पना की जा सकती है। इस आदर के अतिरिक्त हमारा साहित्य ससार के विचार-क्षेत्र में एक नयी धारा बहा कर विश्व का बहुत बडा कल्याण भी कर सकता है। किसी भी कृति के पहले विचार की उत्पत्ति होती है और विचार के निर्माण मे साहित्य का बडा भारी हाथ होता है।

हिन्दी-साहित्य मे आलोचना की जितनी कमी है, उतनी हमारी प्रातीय भाषाओं मे भी नही। विदेशो मे हमारा साहित्य पहुँचने पर वह वहा आलोचना की कसौटी पर न कसा जाय, यह असभव है और तब हम स्वय भी अपने साहित्य को कदाचित् अधिक परख सकेंगे। गुरुदेव रवीद्र बाबू को भी तो हम विदेशो मे उन के साहित्य का आदर होने पर ही पहचान सके।

यहा मै दो शब्द अपने साहित्यिको से भी कहना चाहता हूँ। अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य के निर्माण के लिए लक्ष्य और रचना-विधान दोनो में ही व्यापकता एव उदारता की आवश्यकता है। अन्य भाषाओं के साहित्यिक यदि थोडे सकीर्ण भी हों, तो जो भाषा इतने बड़े देश मे राष्ट्र-भाषा है, अथवा होने जा रही है, उस के साहित्यिकों में सकीर्णता न होनी चाहिए। वे अपने साहित्य को सारे ससार के लिए उपयोगी बनाने का ही यत्न करे। हमारी परम्परा उदारता की परम्परा रही है।

साहित्य और साहित्य-संस्थाओं का उत्तरदायित्व

भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् भावी निर्माण के कार्य को देखते हुए साहित्यिक और साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली सस्थाओं का उत्तरदायित्व बहुत बढ गया है। इन संस्थाओं मे अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अग्रगण्य है। परन्तु, साहि-

त्यिक और साहित्यिक सस्थाएँ तब तक अपना यह उत्तरदायित्व पूरा नहीं कर सकती, जब तक उन्हे स्वतत्र भारत की स्वतत्र केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारों का पूरा-पूरा सहयोग न मिले।

सरकार का कर्त्तव्य

हिन्दी राष्ट्रभाषा और नागरी राष्ट्रलिपि घोषित कराने के साथ ही हमें निम्नलिखित बाते सरकार से करनी है—

(१) सरकार हिन्दी और अहिन्दी समस्त प्रांतो के भाषा-विज्ञो की एक समिति बनाये, जो पारिभाषिक शब्दो के ऐसे अन्तिम रूपो का निर्णय करे, जिन्हें हिन्दी और अहिन्दी सब प्रातो की भाषाओ मे समान रूप से व्यवहृत किया जा सके।

(२) हिन्दी-भाषी प्रातो की समस्त शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो। अहिन्दी प्रांतो मे हिन्दी अनिवार्य की जाय। समस्त विश्वविद्यालयों को और शिक्षा-सस्थाओं को इस सम्बन्ध मे सरकार स्पष्ट आदेश दे।

(३) सरकार द्वारा एक केन्द्रीय ट्रेनिग कालेज खोला जाय, जहाँ सरकारी नौकरियों के लिए जिन व्यक्तियों का चुनाव हो जाय, उनकी नियुक्ति के पहले यदि वे हिन्दी न जानते हों, तो हिन्दी की शिक्षा दी जाय और उनके लिए हिन्दी की परीक्षा उत्तीर्ण होना अनिवार्य हो।

(४) हिन्दी-भाषी प्रांतों के विश्वविद्यालयो में 'डाक्टरेट' के लिए जो निबध लिये जाते हैं, अंग्रेजी भाषा के थीसेस को छोड़, शेष सभी हिन्दी में लिये जायं।

(५) जिस प्रकार सयुक्त प्रांत की धारा-सभा मे सारे बिल, प्रस्ताव, प्रश्न आदि हिन्दी मे प्रस्तुत किये जाते है, उसी प्रकार केन्द्रीय धारा सभा और हिंदी भाषा-भाषी प्रांतो की धारा-सभा मे भी कार्यवाही की जाय। केन्द्रीय धारा-सभा मे कुछ समय तक हिदी के साथ-साथ अंग्रेजी मे भी यह कार्य किया जा सकता है।

(६) प्राचीन साहित्य की खोज, वैज्ञानिक और शास्त्रीय साहित्य के निर्माण तथा प्रत्येक विषय के लिए उपयुक्त पाठ्य-पुस्तक लिखाने के लिए सरकार सम्मेलन को पर्याप्त आर्थिक सहायता दे।

(७) हिन्दी मे तार भेजने और हिंदी टेलीप्रिंटर लाइनों की व्यवस्था की जाय।

(८) जिस प्रकार लार्ड कर्जन ने यहा की पुरानी ऐतिहासिक इमारतों की सुरक्षा के लिए एक कानून बनवाया था, उसी प्रकार एक नया कानून प्राचीन साहित्य-कारों के जन्म-स्थानो की रक्षा के लिए बनाया जाय। गोस्वामी तुलसीदासजी के जन्म-स्थान की रक्षा के लिए यदि कुछ न किया गया, तो वह स्थान बहुत शीघ्र बह जाने

वाला है। इस सम्बन्ध मे तत्काल कुछ-न-कुछ होना अत्यावश्यक है। और इस कार्य मे सरकार से सहायता मिलनी चाहिए।

सम्मेलन का भावी कार्यक्रम

राष्ट्रभाषा और राष्ट्र-लिपि के प्रश्न का निर्णय होने के पश्चात् भी सम्मेलन को उपयुक्त राष्ट्र-भाषा और उपयुक्त राष्ट्रलिपि बनाने तथा सरकार द्वारा इन सारे कार्यो की व्यवस्था कराने का बहुत बडा काम अभी करना है। इसके अतिरिक्त उसने हिन्दी के अनुकूल सारे देश मे वायु-मण्डल तैयार करने का अब तक जो प्रयत्न किया है, उसे भी अभी पूरा करना है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों मे भी हिन्दी-प्रेम जाग्रत करना अभी शेष है। पत्र-पत्रिकादि के क्षेत्र मे, जो ज्ञान-प्रसार के सबसे बड़े साधनों मे से एक है, अंग्रेजी पत्रकारो के हृदयों में हिन्दी की प्रतिष्ठा स्थापित करनी है। विज्ञान और शास्त्रीय पत्र हिन्दी मे नही के बराबर है। जहाँ तक मुझे मालूम है, प्रयाग के 'विज्ञान' नामक पत्र के सिवा इस क्षेत्र मे और कोई भी पत्र हिन्दी मे नहीं निकलता। इस दिशा मे भी सम्मेलन ही कुछ कर सकता है। दूसरी भारतीय भाषाओं मे किस-किस दिशा में क्या-क्या किया जा रहा है और उसका कितना उपयोग हिन्दी मे किया जा सकता है, इस ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। विदेशों मे अफ़्रीका, फीजी, मारिशस, ट्रेनीडाड आदि उपनिवेशो में, जहा भारतीय लाखों की सख्या मे निवास करते है, हिन्दी और हिन्दी के द्वारा भारतीय सस्कृति को पहुचाना है। कहने का तात्पर्य यह है कि राष्ट्रभाषा का प्रश्न हल होने पर भी सम्मेलन के सामने एक बहुत बड़ा कार्यक्रम है। समूचे देश को और जो देश-वासी भारत के बाहर रहते है उन सबको, एक सूत्र मे बाँधने का कार्य मुख्यत. हिन्दी-द्वारा ही हो सकता है। यहा एक बात और कह दूँ। मेरा विश्वास योजना बनाकर कार्य करने मे रहा है। सम्मेलन का सारा कार्य एक निश्चित योजना बनाकर होना चाहिए।

मेरे दो स्वप्न

इस भाषण को पूर्ण करने से पहले मैं अपने दो स्वप्नो के उल्लेख का लोभ सवरण नहीं कर सकता—मेरे प्रथम स्वप्न के फलस्वरूप सन् १९१९ के अ० भा० हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के पटना अधिवेशन मे, जिसके सभापति पं० विष्णुदत्तजी शुक्ल थे, एक प्रस्ताव पास हुआ था, जिसका आशय था कि भिन्न-भिन्न विषयों पर ग्रन्थ-निर्माण करने के लिए लेखकों को एक स्थान पर रखा जाय और उन्हें जीवन-निर्वाह की चिन्ता से मुक्त कर दिया जाय। इसी उद्देश्य से जबलपुर में 'राष्ट्रीय

हिन्दी-मन्दिर' की स्थापना हुई थी, परन्तु वह प्रयास सफल न हो सका। आज लेखकों की जीविका और साहित्य-सृजन दोनो ही प्रश्न उस समय की अपेक्षा कही अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये हैं। इस युग में ऐसी संस्था का निर्माण अत्यन्त आवश्यक है। यदि ऐसी सस्था का निर्माण, जो लेखकों को एक स्थान पर रख सके, नही हो सकता, तो फिर एक ऐसी संस्था का निर्माण होना चाहिए, जो लेखकों को उनकी जीविका की चिन्ता से मुक्त कर उन्ही के स्थान पर रहने दे और उनसे एक निश्चित समय के भीतर एक निश्चित परिमाण में साहित्य-सृजन का कार्य करायें। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यदि साहित्यकार अपनी जीविका चलाने के लिए कोई दूसरा कार्य करते रहें और केवल अवकाश का समय ही साहित्य-सृजन में लगाते रहे, तो हमें जिस साहित्य की आवश्यकता है, उसकी रचना मे वहुत समय लगेगा। लेखकों को हम उनकी जीविका की चिता से मुक्त कर ही इस कार्य को सुन्दर रूप में करा सकते है।

मेरा दूसरा स्वप्न है भारत मे भी 'नोबेल-पुरस्कार' के समान कम-से-कम एक लाख रुपये के एक ऐसे पुरस्कार की व्यवस्था, जो किसी भी भारतीय भापा के सर्वोत्तम ग्रन्थ पर हर तीसरे वर्ष दिया जाये। वह ग्रन्थ चाहे राष्ट्रभाषा हिन्दी में हो अथवा बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड़ आदि किसी भी प्रांतीय भाषा मे।

इन योजनाओं तथा सम्मेलन के अन्य कार्यों के लिए यथेष्ट धन चाहिए। गत युद्ध में कितना कमाया है लोगों ने, उचित व अनुचित दोनो ही प्रकारों से। करोड़ो रुपये लोगों ने इनकम टैक्स के रूप मे दिये हैं। दान के एक-एक करोड़ के ट्रस्ट भी बने हैं। भारत की दान-प्रणाली बड़ी दूषित रही है, अब भी दूषित है। मैं तो समाज का वह संगठन चाहता हू जिसमें न किसी के पास दान देने को रहे और न कोई दान के लिये हाथ फैलाये; परन्तु जब तक व्यक्तिगत सम्पत्ति है, तब तक दानप्रणाली रहेगी और इसलिए उसका सुधार भी अभीष्ट है। क्या भारत में भी इन कार्यों के लिये कोई दाता सामने आयेगा? जिन्होने उचित मार्गो से कमाया है, वे उसमें सार्वजनिक भाग मान कर दान दे सकते है और जिन्होंने अनुचित मार्गों से प्राप्त किया है, वे अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए। ध्यान रखें, यह लक्ष्मी चंचला है। 'स्थिराभव, स्थिराभव, स्थिराभव' का जप करते रहने पर भी यह आज तक कहीं स्थिर नही रही है और न भविष्य मे ही रहने वाली है। बड़े-बड़े साम्राज्यों का निर्माण हुआ और नाश। बड़े-बड़े करोडपति बने और बिगड़े। जिन्होने इस सम्पदा का उपयोग कर लिया, वे ही धन्य हो गये, शेष का वही हाल हुआ, जो धन पर बैठे सांपो का होता है।

इस भाषण का अन्त करता हू मै राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की इन पंक्तियों से—

जय देव-मन्दिर-देहली,
सम-भाव से जिस पर चढी
नृप-हेम-मुद्रा और रंक वराटिका
मुनि-सत्य-सौरभ की कली
कवि-कल्पना जिसमे बढी,
फूले फले साहित्य की वह वाटिका।